

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180842

UNIVERSAL
LIBRARY

UP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H 82**
A 81 J Accession No. **H 3514**

Author **अशक, उपेन्द्रनाथ .**

Title **जय-पराजय . 1956 .**

This book should be returned on or before the date last marked below .

जय-पराजय

नाटककार

उपेन्द्रनाथ 'अश्वक'

नीलाभ प्रकाशन

इलाहाबाद १

राज संस्करण ३॥)

साधारण २॥॥)

प्रकाशक

नीलाभ प्रकाशन गृह, ५ खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद—१

मुद्रक

मणि प्रिंटिंग प्रेस, मणि नगर, ५१ए पूराबल्दी, कोटगंज, इलाहाबाद

दो शब्द

पहला संस्करण

पिछले दो-तीन वर्षों में मुझे जिन कठिन परिस्थितियों से गुज़रना पड़ा, जिन अनदेखी विपत्तियों से जूझना पड़ा और जीवन के इस संघर्ष में मैंने जो कठोर आघात सहे, उन्होंने मुझे एक प्रकार से अशक्त ही कर दिया था, हरा ही दिया था। नया वर्ष बहुतों के लिए नव-संदेश लाता है, बहुतों के अंधेरे दिलों में नूतन आशाओं की ज्योति भर देता है, किन्तु आज से कुछ मास पूर्व १९३७ के एक सिरे पर खड़े होकर जब मैंने सामने की ओर नज़र डाली थी तो मुझे गहरी निराशा और असीम सूनेपन के अतिरिक्त कुछ दिखायी न दिया था। उस समय मेरा मन एक विचित्र उदासीनता से भर गया था। जी चाहता था—बैठा रहूँ, बस सारा-सारा दिन नीरव, चुपचाप बैठा रहूँ, किन्तु जीवन-युद्ध में जय-पराजय का चक्कर तो चलता ही रहता है, विजयी होकर अपने भाग्य को सराहना और पराजित हो, घुटनों में सिर रख कर बैठ जाना तो दुर्बलता है। निरन्तर चलना, निरन्तर लड़ते रहना ही तो जीवन है।

यही सोच कर उठा, चाहा कि इस उदासीनता को भटक दूँ। ऐसा न कर सका तो फिर इसे किसी दूसरी ओर लगाने का ही निश्चय किया। 'जय पराजय' मेरे उसी प्रयास का फल है।

नाटक मुख्यतः खेलने की चीज़ है। इसे लिखते समय नाटक-कार के लिए रंगमंच की आवश्यकताओं का ध्यान रखना नितांत

आवश्यक है। मुझे रंगमंच का यथेष्ट अनुभव है, स्टेज का भी मैंने काफ़ी ध्यान रखा है और यह नाटक, यदि कोई खेलना चाहे तो सफलता पूर्वक, कुछ परिवर्तनों के साथ, खेला भी जा सकता है। तब प्रश्न उठता है कि मैंने इसमें कुछ परिवर्तनों की गुंजाइश ही क्यों रखी ? इसे पूर्णरूप से रंगमंच पर खेला जाने वाला नाटक क्यों नहीं बनाया ? इस सम्बन्ध में दो बातें मैं निवेदन करना चाहता हूँ।

दुर्भाग्य-वश हमारे देश में स्टेज नाम की चीज़ अब नहीं रही। सिनेमा ने पूर्ण-रूप से स्टेज को पीछे फेंक दिया है। दूसरे देशों में भी सिनेमा का आधिपत्य है, पर वहाँ रंग-मंच को भी उपयुक्त स्थान मिला हुआ है। वहाँ नाटक कम्पनियाँ छोटे-छोटे नाटक खेलती हैं जो सिनेमा की भाँति अधिक से अधिक दो घंटों में समाप्त हो जाते हैं। 'शा' और 'इब्सन' के नाटक अपने देश के रंगमंच की आवश्यकताओं को सामने रख कर ही लिखे गये हैं। उन में तीन अथवा चार बड़े-बड़े दृश्य होते हैं। उन्हें ही अंक कह दिया जाता है। वहाँ एकांकियों और भाकियों का भी रिवाज है और वहाँ स्टेज की सुविधा के अनुसार अथवा उसकी ज़रूरतों को सामने रखते हुए नाटककार नाटक लिखते हैं। हमारे देश में ऐसा करना असम्भव सा ही है। नाटककार नाटक लिख देता है और यदि कोई खेलना चाहे तो अपनी आवश्यकतानुसार उस में परिवर्तन कर लेता है।

दूसरे, क्योंकि देश में नाटक को खेलने अथवा देखने वाले कम हैं, इसलिए नाटककार रंगमंच की आवश्यकताओं की अपेक्षा पढ़ने वालों की ज़रूरतों को अधिक ध्यान में रखता है। इस नाटक में

भी पाठकों की सुविधा का मैंने अधिक ध्यान रखा है। नाटक की आरम्भिक घटना (Initial incident) दूसरे अंक के पहिले दृश्य से शुरू होती है, किन्तु पहला अंक पाठकों की सुविधा का ध्यान रख कर ही लिखा गया है। इसमें उस काल की चन्द विशेषताओं का उल्लेख करना मैंने आवश्यक समझा है।

नाटक ऐतिहासिक है। इसकी कहानी 'टाड राजस्थान' में एक डेढ़ पृष्ठ पर लिखी हुई मिल सकती है। मैंने मुख्यतया उसी कहानी को लिया है। मुख्य पात्र भी वहीं से लिये हैं। केवल एक परिवर्तन किया है। टाड माहव ने रणमल को राणा लक्ष्मिह का ससुर बताया है। किन्तु राय बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'उदयपुर का इतिहास' में उसे राणा का साला लिखा है और ससुर का नाम रावत चूड़ावन लिखा है। मुझे सारी कहानी को पढ़ने के बाद यह बात ठीक लगी। इसलिए मैंने इस बात को अपना लिया। और भी कई बातों के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। मैंने उन बातों को नहीं छेड़ा, केवल मुख्य और प्रचलित कहानी की ओर ही ध्यान रखा है।

लाहौर

अगस्त १९३७

चतुर्थ-संस्करण

जय-पराजय का दूसरा संस्करण एक ही वर्ष बाद हुआ, जब उसे पंजाब विश्वविद्यालय की भूपण परीक्षा के लिए स्वीकार किया गया। तीसरा संस्करण १९३९ में हुआ, जब पुस्तक राजपूताना बोर्ड के मैट्रिक के लिए स्वीकृत हुई। इसके बाद मैं लाहौर से चला गया और प्रीत नगर तथा दिल्ली से होता हुआ बम्बई जा पहुँचा

और अपनी पुस्तकों की ओर ध्यान न दे सका। हिन्दी के साधारण प्रकाशकों में इतनी ईमानदारी अभी नहीं आयी कि वे लेखक को उसकी रचना के प्रकाशन की गतिविधि से सूचित रखें। जो भी हो, सात-आठ वर्ष से नाटक मार्केट में दिखायी नहीं दिया। टेक्स्ट बुक प्रकाशकों के गोदाम में सड़ता रहा हो तो कह नहीं सकता। अब जब 'नीलाभ प्रकाशन' का आयोजन हुआ तो 'देवताओं की छाया में', 'छटा बेटा' और 'स्वर्ग की भलक' की भाँति इसे भी गुमनामी के गर्त से निकाला।

इस बीच में नाटक कई जगह खेला गया है और आलोचकों की प्रशंसा का भाजन बना है। नाटक के पात्र 'भारमली' के सम्बन्ध में तो श्री नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी नाटक' में लिखा :

"...और भारमली ! वह तो 'देव सेना' और 'मालविका' के गौरव की अधिकारिणी है। भारमली इस युग की अमर सृष्टि है।"

आज जब मैं नाटक को पढ़ता हूँ तो अनायास जी चाहता है कि इसे एक सिरे से दूसरे सिरे तक बदल डालूँ, पर फिर सोचना हूँ तो पाता हूँ कि यदि उम्र और समय की कमी न हो तो जागरूक लेखक अपनी कौन-कौन सी रचना बदल देना न चाहेगा। स्वास्थ्य इधर वर्षों से साथ नहीं दे रहा, इसलिए एक नजर देख कर बिना कोई बड़ा परिवर्तन किये, नाटक का यह चौथा संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ।

इलाहाबाद

नवम्बर १९५०

उपेन्द्रनाथ अशक

नाटक के पात्र

पुरुष

राणा लक्ष्मि सिंह	मेवाड़ के राणा
चंड	(चूँडा) मेवाड़ के युवराज
राघवदेव	राणा लक्ष्मि सिंह के दूसरे पुत्र
भोटिंग भट्ट	मेवाड़ के प्रख्यात पण्डित
	कीर्तिमान केशव
बनेश्वर राय	मेवाड़ के पुरोहित
हरि सिंह	कुमार राघवदेव का एक सेवक
रावल चूड़ावत	मंडोवर के अधिपति
रणमल	उनका निर्वासित ज्येष्ठ पुत्र
काह्ला	रानी तारा से उनका दूसरा पुत्र
बाघ सिंह	रणमल का साथी, एक राठौर सरदार
अजित	रणमल का एक सेना-नायक
प्रधान मन्त्री, कोषाध्यक्ष, नागरिक, सेवक इत्यादि	

स्त्री

रानी	राणा लक्ष्मि सिंह की बड़ी रानी
हंसा बाई	मंडोवर की राजकुमारी, राणा लक्ष्मि सिंह की दूसरी रानी
हेमवती	राणा लक्ष्मि सिंह की बड़ी लड़की

सुकेशी	राणा लक्ष्मि सिंह की छोटी लड़की
कुसुम	रावल चूड़ावन की बड़ी रानी
तारा	रावल चूड़ावन की दूसरी रानी
मालती	हंसा बाई की सहेली
भारमली	मेवाड़ की प्रसिद्ध गायिका
रेवा	रानी कुसुम की दामी
मेवाड़ की धाय, दामियाँ, सहेलियाँ इत्यादि	

स्थान

चित्तौड़ गढ़	मेवाड़ की राजधानी
खेलवाड़ा	कुमार राघव की जागीर
मण्डोवर*	एक स्वतन्त्र राज्य
मोंटू	एक स्वतन्त्र मुसलमान राज्य

* मंडोवर को मंडोर तथा मंडर भी कहा जाता है ।

जय-पराजय

प्रथम अंक

१

मेवाड़ के इष्ट-देव एकलिंग जी के मन्दिर का एक भू-गृह जिसमें

भगवान लकुटीश*की मूर्ति स्थापित है।

मठाधीश, ब्राह्मण और सेवक मार्ग में दिये जलाते मूर्ति की

उपासना को आ रहे हैं।

भू-गृह में अँधेरा है और अन्दर से उनके गाने की हल्की-सी ध्वनि

सुनायी दे रही है जो प्रतिक्षण समीप होती जा रही है।

गाने की ध्वनि—

हे शिव, हे शंकर, हे ईश

जय जय, जय जय, जय लकुटाश

लकुट दंड है तेरे माथ

विजय पराजय तेरे हाथ

हम सेवक हैं तेरे नाथ

हम पर कृपा करो जगदाश

जय जय, जय जय, जय लकुटाश

*‘लकुटीश’ अथवा ‘लकुलीश’ शिव के १८ अवतारों में से एक माना जाता है। प्राचीन काल में शैव सम्प्रदायों में लकुटीश सम्प्रदाय बहुत

प्रसिद्ध था और समस्त राजपूताना, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिणादि

भगवान लकुटीश की उपासना होती थी। लकुटीश की मूर्ति द्विभुज होती है। उसके बायें हाथ में लकुट (दण्ड) रहता है और दायें हाथ में

एक सेवक—मशाल ऊपर करो, मशाल ऊपर करो !!

दूसरा सेवक—हम पहुँच रहे हैं, हम पहुँच रहे हैं !

तीसरा सेवक—सुनो, सुनो, ऊपर भगवान एकलिंग की स्तुति में गाये जाने वाले गीता की ध्वनि दूर होते होते श्रवण-शक्ति की सीमा से परे चली गयी है.....

चौथा सेवक—और नोरवता हमारी साथिन है, जिसे अंधकार और शीत ने निस्तब्ध बना दिया है ।

मठाधीश—बढ़े चलो, बढ़े चलो और दिये जलाते जाओ !

एक ब्राह्मण—इधर भी, उधर भी, सब ओर दिये जलाओ !
आज विजय का दिन है, उल्लास का दिन है ।

दूसरा ब्राह्मण—चिरकाल से प्यासे इन मार्गों की प्यास बुझा दो !

सब सेवक—हम इन्हें प्रकाश में नहला देंगे ।

मठाधीश—इन झरोखों में भी दिये जलाओ, इन झरोखों में भी ! ऐं ! इधर, इधर !

भूगृह के झरोखों में दिये रखे जाते हैं, अन्दर क्षीण-प्रकाश फैल

जाता है, जिस में भूगृह में आने वाला द्वार, एक खिड़की

और भगवान् लकुटीश की विशाल-मूर्ति

दिखायी देती है ।

एक सेवक—(खिड़की में दिये रखते हुए) हम पहुँच गये, हम बाजोर नामक फल होता है । मूर्ति के सिर पर जैन मूर्तियों के समान केश होते हैं और यह मूर्ति पद्मासन बैठी हुई होती है। (राजपुताना का इतिहास)

मन्दिर के पिछली ओर हैं !

मठाधीश—उधर से चलो, देर हो रही है ।

सेवक दिधे रख कर चलता है, उसके पीछे दियों का थाल लिये

एक दूसरा सेवक और फिर अन्य धीरे-धीरे गुज़रते हैं ।

पहला सेवक—किधर से जाएँ महाराज ! आगे का मार्ग कौन सा है ?

मठाधीश—(रुक कर) उधर से, दायें हाथ को मुड़ कर ।

पहला सेवक—इधर अंधकार है महाराज, सूचीभेष अंधकार है ।

एक ब्राह्मण—भगवान लकुटीश हमारी रक्षा करें !

भगवान.....

पहला सेवक—हाथ को हाथ नहीं सूझता, महाराज !

दूसरा सेवक—लगता है जैसे अंधकार ने अपना मुँह खोल दिया है और हम उसके कंठ में उतरे घले जा रहे हैं ।

वही ब्राह्मण—भगवान लकुटीश हमारी रक्षा करें, भगवान लकु.....

मठाधीश—गाओ, गाओ, भगवान लकुटीश की जय के गान गाओ । रुकावटों का अंधकार दूर हो जायगा और सफलता का उजियाला हमारे पाँव चूमेगा !

सब वही गाना गाते हुए धीरे-धीरे गुज़रते हैं और शनैः शनैः

मशालों का प्रकाश द्वार के रास्ते भू-गृह में फैल जाता है ।

दो सेवक प्रवेश करते हैं ।

एक—भगवान लकुटीश की जय ! भगवान लकुटीश की जय ।

दूसरा—हम पहुँच गये; हम भगवान की मूर्ति के सामने हैं; हम भगवान को शीश नवा रहे हैं ।

नत-मस्तक होते हैं ।

धीरे-धीरे दूसरे भी प्रवेश करते हैं ।

मठाधीश—(अन्दर से) आलोकित कर दो ! भगवान लकुटीश के निवासस्थान का कोना-कोना आलोकित कर दो !!

ब्राह्मणों के साथ प्रवेश करता है, सेवक दिये जलाते हैं । मठा-

धीश थाल में से दिये लेकर मूर्ति के चरणों में रखता है ।

—(हाथ जोड़कर) भगवान लकुटीश, एकलिंग के अवतार, विजय के देवता, मेवाड़ के रक्षक ! उसकी भूमि को उर्वरा बनाने वाले, उसकी नदियों में वेग; उसके सरोवरों में अनन्त जलराशि; उसके पहाड़ों में सप्त धातु; उसके वृक्षों में फल; उसकी लताओं में फूल देने वाले, उसकी प्रजा को धनधान्य से सम्पन्न करने वाले ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है !!

(सिर झुकाता है ।)

—भगवान ! आज तेरी कृपा से मेवाड़ का भाल एक बार फिर उन्नत हुआ है । मेवाड़ ने मेदों* की परास्त करके वर्धन‡ पर विजय-पताका फहरायी है । राणा लक्ष्मि सिंह का रण-घोष, जिसने शत्रुओं का धैर्य विध्वंस कर दिया, अब भी युद्ध-

* मेद (जाति) ‡ बदनौर ।

भूमि में गूँजर रहा है और कुमारों के रण-कोशल की धाक देश भर में बैठ गयी है। आज ऊम तेज वाले महाराणा विजयी होकर, वीर शिरोमणि युवराज चंडॐ और कुमार राघवदेव के साथ राजधानी लौटे हैं। प्रार्थना है भगवान, तेरी कृपा मेवाड़ पर इसी प्रकार बनी रहे। उसके महाराणा सदैव विजयी हों और शत्रु पराजय का मुँह देखें।

(पुनः नत-मस्तक होता है ।)

(सेवकों से) ले आओ, जे आओ, दियो का थाल ले आओ, भगवान लकुटीश की आरती उतारें।

(सब आरती उतारते और गाते हैं :)

जय लकुटीश

जय जय, जय जय, जय लकुटीश

हे शिव, हे शंकर, हे ईश

जय लकुटीश

जय जय, जय जय, जय लकुटीश

लकुट दंड है तेरे माथ

विजय - पराजय तेरे हाथ

हम सेवक हैं तेरे नाथ

हम पर कृपा करो जगदीश

जय जय, जय जय, जय लकुटीश

(पट परिवर्तन)

*कुमार चूड़ावत ।

एक उपवन

विजय के उपलक्ष में खुशियाँ मनायी जा रही हैं,
 दो कुंजों के मध्य रंगशाला बनी है; भीड़ इकट्ठी
 हो रही है ।

दो नागरिक प्रवेश करते हैं ।

एक—(भीड़ की ओर देखकर) आज वर्धन की विजय के उत्साह में चित्तौड़ की गलियों में, बाजारों में, बागों-वाटिकाओं में आह्लाद का नृत्य हो रहा है । गायक और नर्तक अपने-अपने स्थान पर अपनी कला का चमत्कार दिखा रहे हैं; पर दर्शकों के लिए श्रोताओं के लिए एक ही स्थान पर जमना ठीक नहीं, उन्हें तो चल-फिर कर रसाम्बादन करना चाहिए । (साथी से) यह देखो, यहाँ अभी से कितनी भीड़ जमा हो गयी है । भारमली यहीं तो गायेंगी । चलो चलो, शीघ्र चल कर अच्छी जगह प्राप्त कर लें !

आगे बढ़कर जगह बनाते हुए बैठे जाते हैं ।

दो और नागरिक प्रवेश करते हैं ।

एक—अरे भारमली यहीं गायेंगी चलो अब यहीं बैठें ।

(बढ़कर बैठते हैं ।)

एक आवाज़—(नेपथ्य में) कुमार राघवदेव की जय !

दूसरी आवाज़ (नेपथ्य में) मार्ग ढोड़ दो, मार्ग ढोड़ दो !

भीड़ में 'कुमार आ गये' 'कुमार आ गये' का शोर ।

सब उठ कर खड़े हो जाते हैं । रंगशाला का

संयोजक आगे बढ़ता है ।

रणमल, बाबुसिंह, पदाधिकारियों तथा अन्य सैनिकों

के साथ कुमार राघव का प्रवेश ।

संयोजक—आइए, पधारिए ! इस स्थान को अपने चरण कमलों से पवित्र कीजिए ।

कुमार—मुझे ठहरना नहीं, मुझे जाना है, नगर के अन्य स्थानों का निरीक्षण करना है । मंत्रि-मंडल की बैठक में शामिल होना है ।

एक अधिकारी—प्रातः से संध्या तक चलते-चलते, दोनों हाथों से निर्धनो, दीन-दुःखियों, विपन्नो को दान देते-देते कुमार, आप थक गये होंगे, अब ठहरिए, मुस्ता लीजिए !

भारमजी मंच पर आती है, रणमल उसकी ओर

टकटकी लगा कर देखता है ।

दूसरा अधिकारी—हाँ, हाँ, कुमार अब आप विश्राम कीजिए !

कुमार—जीवन में विश्राम कहाँ सामन्त जी, ठहरना, मुस्ताना कहाँ ? निरन्तर, अथक चलते रहना ही तो जीवन है, ठहरना तो मृत्यु है, ठहरना तो.....

भारमजी की ओर कुछ क्षण देखते हैं, फिर आँख नीची कर

लेते हैं, मुख पर लाजी दौड़ जाती है ।

संयोजक—और नहीं तो हमारे लिए ही, हमारे उल्लास को अपनी उपस्थिति से बढ़ाने के लिए ही आप ठहरें ! नगरी * की प्रख्यात गायिका समस्त भारत में अपनी कला का डंका बजाती हुई अभी कुछ दिन पहले देश को लौटी है । विजय-दिवस के उपलक्ष में, चित्तौड़-वासियों के मनोरंनार्थ उसके संगीत का आयोजन किया गया है ।

कुमार एक बार और भारमली की ओर देखते हैं । फिर

रणमल की ओर, फिर मुस्कराते हैं ।

कुमार—मेरा विचार है कि मंडोवर कुमार कुछ क्षण बैठना चाहते हैं । अच्छा, तो मैं भी कुछ देर के लिए बैठूंगा, परन्तु मुझे जाना है, मंत्रि-मंडल की बैठक आरम्भ हो गयी होगी । वे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे ।

एक कुंज में कुमार के बैठने का प्रबन्ध किया जाता है । सितार,

तम्बूरे और दूसरे साज़ों की मधुर ध्वनि मंच पर गूँज उठता

है और भारमली गाती है :

मानस के पदों पर छाओ,

बिध जाओ उर के तारों में !

आँसु बन कर हँ आ जाओ,

नयनों के कारागारों में !

रस बन, मलयानिल के रथ पर,

आ जाओ ओ मेरे मानो !

* मेवाड़ का नगर ।

मेरे जावन का सूनापन,
हो मुखरित कह नयी कहानी !

सब तन्मय होकर सुनते हैं । रणमज अनिमेष दगों से
भारमजो को देखता है । वह कुमार को
देखती हुई गाती है—

विस्मृति में स्मृतियों का ख हो,
जाग पड़े सब सोये सपने ।
फिर अतात के वैभव को मै,
पा हा लूँ अन्तर में अपने ।

‘धन्य है,’ ‘धन्य है,’ की ध्वनि ।

कुमार उठते हैं, गले का हार उतारकर सामन्त को देते हैं ।

सामन्त—(हार भारमजो की ओर बढ़ाते हुए ऊँची आवाज़ से)
कुमार अति प्रसन्न हुए । भारमजो और जो चाहती हैं, निःसंकोच
कहें । जितने धन की आवश्यकता हो बतायें ।

संयोजक भारमजो से पूछता है, भारमजो हार लेकर कुमार को
प्रणाम करती है ।

संयोजक—वे धन नहीं चाहती ।

सामन्त—तो ?

संयोजक—वे भ्रमण करके थक गयी हैं । वे कुछ देर के लिए
विश्राम चाहती हैं, यदि कुमार कृपा करके महलों में ही.....

कुमार—मैं समझ गया, मैं माता जी से कहूँगा । (सामन्त से)

चलिए देर हो रही है, हमारी प्रतीक्षा होती होगी । (रणमञ्च से)
 और आप तो अभी बैठेंगे ही, हाँ हाँ, बैठिए । मैं केवल सामन्त
 जी और सेवकों के साथ जाता हूँ । (एक सैनिक से) मंडोवर-
 कुमार की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखना ।

बिना किसी ओर देखे चले जाते हैं, भारमञ्जी उनकी ओर
 देखती रहती है और फिर जाने लगती है ।

ओताओ में शोर मच जाता है ।

एक—अभी नहीं, अभी नहीं ।

दूसरा—एक और मधु-मय-मादक गान !

तीसरा—शुष्क धरती की प्यास दो वूँदों से न बुझेगी, देवि !
 उसे तो अमृत-वर्षा चाहिए ।

भारमञ्जी गाती है—

सिखा दो ऐसी मीठी तान !

विह्वलता में जिसको गाकर,

पागल हों ये प्राण !

सिखा दो ऐसी मीठी तान !

पट-परिवर्तन

मन्त्रि-मण्डल की बैठक

प्रधान मंत्री—क्यों केशव जी, आपका क्या विचार है ? संध्या होने को आयी है और कुमार अभी तक नहीं पचारे, तो क्या उनकी अनुपस्थिति में ही इन विषयों पर भी विचार होने दिया जाय.....

भोटिंग भट्ट*—कुमार को आना चाहिए था ।

मंत्री—अथवा इस अन्तिम विषय को कल पर स्थगित कर दिया जाय ?

धनेश्वर राय—नहीं, अमात्यवर, स्थगित नहीं ! ऐसे महत्वपूर्ण विषय को कल पर नहीं टाला जा सकता । महाराणा लक्ष्मिह के राज्यकाल में सर्वत्र शान्ति का निवास है; शत्रुओं के साहस ढीले पड़ गये हैं; बाह्य-आक्रमणों का डर नहीं रहा और वर्षों के विपत्तिमय जीवन के पश्चात् मेवाड़ को सुख की साँस मिली है, इस समय विरोधियों का, मेवाड़ की उन्नति तथा

*भोटिंग भट्ट दशपुर (दशोरा) जाति के ब्राह्मण थे । इनका वास्तविक नाम कीर्तिमान केशव था । ये बहुत सी विद्याओं में निपुण थे और अनेक शास्त्रार्थों में विजयी हुए थे । इनको भोटिंग भट्ट कहा जाता था । महाराणा लक्ष्मिह ने इनको पिपली गाँव और धनेश्वर राय को पंच देवालय गाँव दिया था । ये बड़े राजभक्त थे । (राजपूताना का इतिहास)

प्रगति से ईर्ष्या रखने वालों का इतनी भारी संख्या में आना आशंका से रहित नहीं। इससे शान्ति भंग होने की सम्भावना है। वह शीघ्र हो अथवा कुछ देर बाद, पर वह होगी अवश्य; दूरदर्शिता कह रही है, वह अवश्य होगी।

फोटिंग भट्ट—उनका आगमन अच्छा नहीं—यह अशान्ति लायेगा, यह विपत्ति लायेगा। नक्षत्र कह रहे हैं, लक्षण संकेत कर रहे हैं। जो युद्ध से न हो सका, वह यों होगा। ओह ! भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है ? भगवान एकलिंग हमारी रक्षा करें, भगवान एकलिंग.....

मंत्री—घबरायें नहीं कीर्तिमान जी ! मेरे विचार में कुछ और क्षण कुमार की प्रतीक्षा की जाय, उनकी जो सम्मति हो वह युवराज तक पहुँचायी जाय और यदि वे मानें तो फिर महाराणा से अनुरोध किया जाय कि बैठे-बैठाये वे विपत्ति मोल न लें। दूध देकर विपधरों को न पालें।

फोटिंग भट्ट—दस सहस्र डोडी ! मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ में !! वे किसी वेश में आये हों, वे असहाय बन कर आये हों, वे भिखारी बनकर आये हों, पर अवसर मिलने पर वे काटेंगे, हंक मारने से बाज़ न आयेगे।

निराशा से सिर झुका लेते हैं।

कोषाध्यक्ष—जितनी देर में कुमार आय, ज़रा इस बात पर भी विचार कर लिया जाय।

मंत्री—हाँ, हाँ, कहिए आप क्या कहना चाहते हैं ?

कोषाध्यक्ष—महाराणा ने युवराज के कहने पर रानी पद्मिनी के महलों के भग्न-खंड पुनः बनवाने की आज्ञा दी थी, इस पर अनुमान से कहीं अधिक व्यय हुआ.....

मंत्री—हूँ !

कोषाध्यक्ष—अब युवराज का अनुरोध है कि महलों के खंडहरों में जो बन सकते हों, वे अवश्य बनवाये जायँ !

मंत्री—फिर ?

कोषाध्यक्ष—छोटे कुमार किसानों की सुविधा के लिए पानी के और बाँध बनवाना चाहते हैं और स्वयं महाराणा ने सीमान्त पर दुर्ग-निर्माण की आज्ञा दे रखी है ।

मंत्री—मैं जानता हूँ ।

कोषाध्यक्ष—यह सब कुछ एक साथ न आरम्भ हो सकेगा ।

मंत्री—क्यों ?

कोषाध्यक्ष—कोष में इतना रुपया नहीं ! आय से व्यय अधिक हो चुका ।

मंत्री—जावर की खानें.....

कोषाध्यक्ष—पिछले वर्ष तक निकली हुई चाँदी से जो आय हुई वह सब समाप्त हो चुकी है । आज तक बीसियों कुण्ड, बाँध, सरोवर, मीलों और दुर्ग बनवाये जा चुके हैं; बीसियों मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया है; नये महल बनवाने गये हैं; पिछोला भील

पर रुपया लगाया गया है; आखिर यह सब खर्च आता कहाँ से है ? जावर की चाँदी की आय ही से तो । लगान से राज्य का काम भी नहीं चल सकता ।

नेपथ्य में — कुमार राघवदेव की जय ! कुमार राघवदेव की जय !!

सब — लो कुमार आ गये ।

सब उठ कर खड़े होते हैं ।

सेवकों और सामन्तों के साथ कुमार राघवदेव का प्रवेश ।

सेवक बाहर चले जाते हैं ।

मंत्री—(अभिवादन करते हुए) आप ने बड़ी बाट दिखायी देव ! सब विषयों पर विचार हो चुका है ।

कुमार—मैं सामन्तों से क्षमा माँगता हूँ । मैं विवश था । लोकप्रियता का मार्ग बड़ा कठिन है मंत्रिवर । इसमें फिसलन है, कीचड़ है और गढ़े हैं । कर्त्तव्य को ही अपना पथ-प्रदर्शक बना कर चलना पड़ता है । नगरी की प्रख्यात गायिका भारमली का संगीत हो रहा था और मैं संयोजकों का अनुरोध न टाल सका ।

मंत्री—सेवकों के अनुरोध का मान रखना ही स्वामियों की सहृदयता है और कुमार उदारशाय हैं ! (कोषाध्यक्ष से) हाँ, आप अपनी बात जारी रखें ।

कोषाध्यक्ष—मैं कह रहा था कि एक ही ढंग से सब काम मली भाँति पूरे हो सकते हैं ।

मंत्री—कैसे ?

कोषाध्यक्ष—यही कि लगान बढ़ा दिया जाय ।

कुमार—(चौंकर) लगान बढ़ा दिया जाय, क्यों पृथ्वीनाथ जी, ऐसी कौन सी विपत्ति आ पड़ी, जिससे बेचारे किसानों पर अधिक बोझ डालना अनिवार्य हो गया ?

कोषाध्यक्ष—इतने काम एक साथ कैसे आरम्भ हो सकते हैं, कुमार ! रावल रत्नसिंह के महलों का पुनर्निर्माण, नये बाँध और दुर्ग बनाना । कोष में इन सब कामों का बोझ उठाने की शक्ति नहीं । इसके अतिरिक्त और कोई साधन दिखायी नहीं देता !

कुमार—(कुछ सोच कर) बाँध अत्यन्त आवश्यक हैं । अनावृष्टि के दिनों में किसानों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा ! और दुर्ग, मेवाड़ को सदैव बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए उनका निर्माण भी जरूरी है और खंडहर—खैर में युवराज से बात करूँगा और जो निश्चय होगा, उसकी सूचना आपको दे दी जायगी ।

मंत्री—एक बात और है जिसके लिए आपको कष्ट दिया गया है ।

कुमार—मैं प्रस्तुत हूँ ।

मंत्री—आज ही श्री कीर्तिमान केशव ने मुझे यह बात आप

तक पहुँचाने को कहा है कि राज्य की शान्ति के लिए राठौर-कुमार रणमल का आगमन शुभ नहीं। वे अनिष्ट की आशंका करते हैं। आप राठौर कुमार को किसी तरह टाल क्यों नहीं देते ?

कुमार—शरणागत को शरण न दी जाय, आप क्या कहते हैं अमात्य ! ऐसा कभी हुआ है ? ऐसा कभी हो सकता है ? क्या राजपूत, केवल अनिष्ट की आशंका से अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो जायँगे, अपनी मर्यादा छोड़ देंगे ?

ओटिंग भट्ट—(आवेश में उठकर) यह शुभ नहीं कुमार ! हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया, जो शास्त्र कहते हैं, वह आपको बता दिया। डोडियों का आगमन ठीक नहीं। इनके साथ विपत्ति आयेगी, मुसीबत आयेगी—राज्य-परिवर्तन, धन और जन की हानि, अशान्ति—सर्वत्र अशान्ति, ओह ! भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है !

बेचैनी से धूमते हैं।

कुमार—अशान्ति हो, महानाश अथवा प्रलय हो, पर राजपूत अपनी मर्यादा को छोड़ देंगे, ऐसा नहीं हो सकता। सूर्यवंश में कभी ऐसा नहीं हुआ। रणमल हमारे अतिथि हैं, हमारी शरण में आये हैं। उनकी रक्षा करना हमारा धर्म है, विपत्तियों का सामना करके भी उनकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है।

उठ खड़े होते हैं।

ओटिंग भट्ट—कुमार.....

कुमार—अधेरा बढ़ चला है और मुझे अभी नगर में कई स्थानों पर जाना है। अनाथालयों में मेरी प्रतीक्षा होती होगी, बच्चे मेरी बात देख रहे होंगे।

सामन्तों के साथ प्रस्थान

मंत्री—हम युवराज से कहेंगे, हम महाराज से प्रार्थना करेंगे। आप शान्त हों। आने वाली विपत्ति से मेवाड़ की रक्षा की जायगी।

दूसरे मंत्रियों के साथ प्रस्थान

ओटिंग मट्ट—तहीं समझे, विपत्ति कहीं बाहर से न आयेगी। यहीं सब कुछ घटेगा। लड़ाई न होगी; युद्ध न होगा; अनहोनी बातें होंगी; अनजानी विपत्तियाँ टूटेंगी ! ईर्ष्या, द्वेष और गृह-कलह की आग में मेवाड़ जल उठेगा। भस्म हो जायगा।
(धनेश्वर से) चलिए पण्डितवर !

निराश-भाव से दोनों का प्रस्थान

पटनपरिवर्तन

महाराणा लक्षसिंह और उनकी रानी

लक्षसिंह—तुमने ठीक ही कहा रानी ! वास्तव में राज्य मैं नहीं करता । मैं तो नाम का राजा हूँ । राज्य तो तुम्हारे दोनों कुँवर करते हैं । मैं इन्हीं दो आँखों से देखता हूँ, इन्हीं दो कानों से सुनता हूँ और मस्तिष्क के इन्हीं दो कोनों से सोचता हूँ । यह जो कुछ तुम्हें मेवाड़ में दिखायी दे रहा है, सब सुधार और पुनर्निर्माण—इन पर हस्ताक्षर तो मेरे हैं, पर इन्हें लिखाने वाला प्रेरणा का हाथ कुमारों ही का है ।

रानी—महान-आत्माएँ अच्छे कामों का श्रेय आप नहीं लिया करतीं ।

लक्षसिंह—नहीं रानी ! मैं महान नहीं । और मैं तो सोचा करता हूँ कि मैं विचारक, सुधारक, अथवा प्रबन्धक कुछ भी नहीं । मैं तो केवल सिपाही हूँ, तलवार पर भरोसा रखने वाला, बात पर कट मरने वाला राजपूत सिपाही ! और जो कुछ मैं समझा जाता हूँ अथवा समझा जाऊँगा, वह सब कुछ मैं नहीं हूँ ।

रानी—आप सैनिक हैं, मुझे इस पर खेद नहीं । मैं अपने सैनिक स्वामी पर गर्व करती हूँ । कौन राजपूतनी है जिसका हृदय इस विचार से फूल न उठता होगा कि उसका पति सच्चा

राजपूत है। वह घर में बैठने वाला भीरु, कायर और डरपोक व्यक्ति नहीं, बल्कि अपने देश के हित, मान के हित और मर्यादा के हित प्राणों को अकिंचन समझने वाला वीर राजपूत है, परन्तु आप तो सच्चे सिपाही होने के साथ प्रजा-वत्सल, कर्तव्य-परायण शासक भी हैं—यह बात मैं कैसे भूल सकती हूँ ?

लक्ष्मि—हम तीनों बाप-बेटे क्या हैं रानी, इस बात का पता हमारी रुचियों से चल जायगा। हम जो कुछ करते हैं, जो कुछ बनाते हैं, उससे हमारा व्यक्तित्व भली-भाँति झलकता है। युवराज सच्चा राजपूत है और राजपूत संस्कृति पर जान देता है। मेवाड़ के पुराने खंडहर—जहाँ राजपूतों का रक्त बहा है, उसे अत्यन्त प्रिय हैं और उनकी रक्षा को वह देश का सबसे महत्वपूर्ण काम समझता है। राघव प्रबन्धक और सुधारक हैं। उसके प्रेम की वस्तु जनता है और उसे सुखी बनाना उसके जीवन का चरम ध्येय है। रहा मैं—मैं तो लड़ाका हूँ, युद्ध से जिस चीज का सम्बन्ध है—वह मुझे प्रिय है। मेरे बनाये हुए दुर्ग मुक्त-कंठ से मेरे कथन की गवाही देंगे।

रानी—मैं अपने योद्धा राना पर गर्व करती हूँ। मुझ-सा प्रसन्न कोई नहीं !

लक्ष्मि—परन्तु रानी जानती हो, कुमारों की इच्छाओं के आगे मैं अपनी अभिलाषाओं से हाथ खींच लेता हूँ। अभी हाल

ही में मैंने सोमा पर नये दुर्ग बनाने की आज्ञा दी थी, परन्तु युवराज ने अलाउद्दीन के प्रलयकारी हाथों से विध्वंस किये गये रावल रत्नसिंह के भग्न महलों को दोबारा बनवाने की इच्छा प्रकट की और कुमार रात्रव किसानों के लिए बाँध बनवाने का अनुरोध करने लगा। कोष में इतना धन था नहीं, कुमारों को मैं दुखी न करना चाहता था, विवश होकर अपनी इच्छा मुझे अगले वर्ष के लिए स्थगित करनी पड़ी।

रानी—आपको अपने पुत्रों से अपार प्रेम है।

लक्ष्मसिंह—नहीं रानी, प्रेम तो अपनी सन्तान से सभी को होता है। मुझे तो उनसे प्रेम ही नहीं वरन् उन पर श्रद्धा भी है, मुझे उन पर गर्व है। उनको देख कर प्रसन्नता से मेरी छाती फूल जाती है।

रानी—और मेरे पुत्र भी, महाराज, बड़े पितृ-भक्त हैं। समय आने पर वे अपना सर्वस्व अपने पिता की साधारण-सी इच्छा पर न्योछावर कर सकते हैं।

लक्ष्मसिंह—मैं खुश हूँ, अति प्रसन्न हूँ।

दासी का प्रवेश

दासी—महाराज, प्रधान मंत्री कुछ बात करना चाहते हैं।

रानी—उन्हें इधर ही ले आओ !

दासी का प्रस्थान

रानी—हेमलता को अपने राज्य से आये कई दिन हो गये, मैं उससे उधर का हाल भी न पूछ सकी। कुछ ही दिन तो रहेंगी वह, मैं चलती हूँ (उठती है।) यह भी देखूँगी कि हमारी सुकेशी कुछ गुनगुनाने भी लगी है या नहीं। भारमली को आये तो काफ़ी दिन हो गये हैं।

लक्षसिंह—भारमली कौन ?

रानी—सुनती हूँ नगरी की प्रसिद्ध गायिका है। इतनी-सी आयु में इतनी निपुणता ! महाराज, गाती है तो जादू फूंक देती है। मैंने छोटे कुमार के अनुरोध में उमे महलों में रख लिया है।

प्रस्थान

अमात्य प्रवेश करते हैं और महाराणा को अभिवादन करते हुए एक आसन पर बैठते हैं।

लक्षसिंह—आओ अमात्यवर, आज ऐसे समय में कैसे पधारे ?

प्र० मंत्री—महाराज, एक कठिन समस्या उपस्थित है। आपने मंडोवरकुमार रणमण को अपने यहाँ आश्रय दिया है.....।

लक्षसिंह—(कुछ चौंकर) क्यों इसमें क्या बुराई है ?

प्र० मंत्री—मंडोवर के राव चूड़ावत, बाहर से चाहे कुछ हों, परन्तु हृदय में हम से ईर्ष्या रखते हैं।

लक्षसिंह—यह और भी कारण है कि उनके ज्येष्ठ पुत्र को आश्रय दिया जाय, उन्होंने केवल छोटी रानी के प्रेम से बशीभूत होकर उसे राज्याधिकार से च्युत करके अपना देश छोड़ने पर विवश कर दिया है । समय आने पर रणमल को मंडोवर का राणा घोषित करके मंडोवर को अपने अधिकार में लाया जा सकता है ।

प्र० मंत्री—किन्तु पण्डित कीर्तिमान ने कहा है.....

लक्षसिंह—(तनिक आकुलता से) उन्होंने क्या कहा है ?

प्र० मंत्री—कि यदि रणमल मेवाड़ में रहे तो मेवाड़ पर कोई अज्ञात विपत्ति आयेंगी ?

लक्षसिंह—अज्ञात विपत्ति आयेंगी ?

प्र० मंत्री—हाँ महाराज, वे ऐसा कहते हैं ।

लक्षसिंह—अज्ञात विपत्ति आयेंगी, परन्तु शरण में आये हुएों को आश्रय देना तो राजपूनों का पुरातन कर्त्तव्य है, असहायों को सहायता करना तो उनका धर्म है । राजनीति को छोड़ भी दिया तो धर्म और मर्यादा को कैसे छोड़ा जा सकता है ? (सोचते हैं ।) युवराज से पूछा ?

प्र० मंत्री—हाँ महाराज !

लक्षसिंह—उन्होंने क्या कहा ?

प्र० मंत्री—युवराज ने कहा.....

युवराज चंड का प्रवेश

चंड—जो मैंने कल कहा था, वह आज भी कहता हूँ ।

पिता जी ! हम राजपूत हैं; राजपूतों में श्रेष्ठ है, मेवाड़ जैसे राज्य के अधिपति हैं, यदि हम आश्रितों को आश्रय न देंगे तो और कौन देगा ?

प्र० मंत्री—किन्तु कीर्तिमान.....

चंड—अनिष्ट की आशंका करते हैं, यही न ! मैं कहता हूँ, यदि अनिष्ट की आशंका न हो, बल्कि निश्चय हो तो क्या राजपूत अपनी मर्यादा को छोड़ देंगे ? क्या अपनी पराजय को सामने देख कर वे युद्ध से पीठ मोड़ लेंगे ? यह जीवन तो एक संघर्ष है मंत्रिवर ! अपने कर्त्तव्य के अनुसार युद्ध करने वाला यदि हार भी जाय तो जीत उसी की है और कर्त्तव्य के पथ से विचलित होकर जीत जाने वाला भी पराजित है. हाग हुआ है !

लक्ष्मिह—राघव की क्या सम्मति है ?

चंड—राघव की सम्मति क्या होगी पिता जी ! वह क्या राजपूत नहीं, उसकी नसी में क्या सूर्यवंशी लह नही ? और सुनिष्ट मंत्रिवर ! हमें रणमल को न केवल आश्रय देना है, बल्कि अवसर पड़ने पर मंडोवर का राज्य भी दिलाना है ।

प्र० मंत्री—परन्तु रणमल शायद सच्चा राजपूत सिद्ध न हो ।

चंड—न सही, हमें अपने कर्त्तव्य से काम है, दूसरे के कर्त्तव्य से नहीं । यदि दूसरा अपने कर्त्तव्य का पालन न करे तो क्या हम भी न करेंगे ?

प्र० मंत्री—उसके चरित्र पर भी शंका की जा सकती है । मैं जानता हूँ, मेरे पास प्रमाण हैं !

युवराज—इससे क्या प्रयोजन है मंत्रिवर ! जिसे आश्रय दे दिया, दे दिया, फिर वह कैसा भी दुष्ट क्यों न हो, आश्रय-दाता का काम तो आश्रय देना है, उसके गुण-दोषों का विवेचन करना नहीं ।

तेज़ी से प्रस्थान

प्र० मंत्री—तो महाराज.....

लक्ष्मि—मैं क्या राजपूत नहीं अमात्य, आप क्या राजपूत नहीं हैं ? जाइए मंडोवर-कुमार के रहने का प्रबन्ध कीजिए । राजपूतों के सिद्धान्त अनिष्ट के आगे कभी ढीले नहीं पड़े ।

प्र० मंत्री—जो आज्ञा ।

प्रस्थान

पट-परिवर्तन

वाटिका में भरने के किनारे इवेत चबूतरा
भारमली सितार से सिर लगाये तन्मय भाव से गा रहा है—

आज हृदय में उठ-उठ आते,
आँखों के पथ में बह जाते,
ये मेरे उद्गार !

पागल,

ये मेरे उद्गार ।

भङ्गा उठती है मानस में,
आज नहीं जो अपने बस में,
दूट चले सब तार !

पागल,

ये मेरे उद्गार ?

रणमल का प्रवेश

रणमल—भारमली !

भारमली—(चौंकर) कौन, मंडोवर कुमार !

रणमल—नहीं रुक सका भारमली । यह चाँदनी रात, यह उज्ज्वल भरना, यह मन्द समीर ! मैंने लेटना चाहा, लेट न सका; सोना चाहा, सो न सका; आँखें बन्द कीं, पलक भारी न हुए । नस-नस में, रोम-रोम में एक ज्वाला धधक रही है और तुम्हारा

यह करुणापूर्ण गीत बयार के उन्मत्त भोंकों की भाँति उसे भड़का रहा है।

उसे कंधे से छूता है, तड़प कर भारमली उठ खड़ी होती है

भारमली—मंडोवर कुमार !

रणमल—आँखों को मूर्तिमान क्रोध बना कर, ज्वाला जैसी इस दृष्टि से मुझे न देखो भारमली। मैं तो तुम्हारी एक सहानुभूतिपूर्ण निगाह का भिखारी हूँ, यह आग जैसी दृष्टि मुझ पर न डालो ! अग्नि को बुझाने के लिए शीतल जल की आवश्यकता होती है, आग से आग कब बुझ सकेगी ?

भारमली—रात के समय यहाँ आने का दुस्साहस आपको कैसे हुआ कुमार ! आपको लज्जा नहीं आती ?

रणमल—मैंने पहले कहा न भारमली ! मैं रुक नहीं सका। मैंने चाहा मैं न आऊँ, यह दुस्साहस न करूँ, निर्वासित मैं, आश्रित मैं—पर तुम्हारा गीत, तुम्हारे सुन्दर सुपमा से बने हुए मुख की कल्पना, आकाशगामी चाँद के सामने धरती के इस चाँद को देखने की लालसा, मुझे यहाँ खींच लायी। मैं नहीं रुक सका, अपने आप पर अंकुश नहीं रख सका।

आगे बढ़ता है।

भारमली—(पीछे हटती हुई) मंडोवर-कुमार, मंडोवर कुमार !

बढ़ कर उसे कंधों से थाम लेता है । भारमली झटका

देकर उसे धकेल देता है ।

भारमली—वही खड़े रहो राठौर, नहीं अच्छा न होगा !

रणमल—मैं तुम्हें कुछ कहता तो नहीं भारमली ! मैं तो.....

तेज़ी के साथ राघवदेव का प्रवेश

‘कुमार’, ‘कुमार’ कहकर भारमली दरो हुई मृगो के

समान उसके पास जा खड़ी होता है ।

राघवदेव—(रणमल को देखकर) मंडोवर-कुमार !

रणमल—(चुप)

राघवदेव—ऐसा साहस फिर कभी न करना कुमार ! तुम हमारे अतिथि हो, नहीं तो.....लज्जा तुम्हारे पाँव की जंजीर बन जानी चाहिए ।

क्रोध से मुख तमतमा जाता है । रणमल धारे-धारे खिसक जाता है ।

राघवदेव और भारमली निमिष-मात्र के लिए एक दूसरे को

देखते हैं, फिर आँखें नीचा कर लेते हैं ।

राघवदेव—मैं जाता हूँ देवि, मैं चेतावनी दे दूँगा । अब राठौर को कभी ऐसा साहस न होगा ।

चलते हैं ।

भारमली—कुमार !

रुक कर कुमार उसकी ओर देखते हैं ।

राघवदेव—कोई और बात है देवि !

भारमली चुप रहती है, कुमार तेज़ी से चले जाते हैं ।

भारमली—(निश्वास लेकर) कुमार, कुमार, ओह ! मैं बात न कर सकी, कितना चाहती थी, पर बात तक न कर सकी !

जम्बी साँस भरकर फिर चबूतरे पर जा बैठती है ।

और गाने का प्रयास करती है—

जाओ मैं क्या रोक सकूँगी,

क्या कह कर मैं टोक सकूँगी,

क्या मेरा अधिकार ?

पागल,

झुँझकाकर सितार रख देती है ।

—नहीं गाया जाता, ज़बान कुछ कहती है, मन कुछ कहता है, वह मन का साथ नहीं देती, मन उसका साथ नहीं देता ।

फिर दीर्घ-निश्वास छोड़ती है ।

सितार उठा कर धीरे-धीरे चली जाती है ।

रणमल एक वृक्ष के पीछे से निकलता है ।

रणमल—(धीरे-धीरे टहलता हुआ जैसे अपने से) चली गयी । चली जाओ, किन्तु स्मरण रखना भारमली ! एक दिन तुम्हें मेरी होना होगा और कुमार ! तुम्हें मेरे मार्ग से हट जाना होगा, नहीं तो मैं स्वयं हटा दूँगा—सदा के लिए तुम्हें अपने मार्ग से हटा दूँगा ।

मंडोवर की एक राज्य-वाटिका
बड़ी रानी कुसुम और उसकी दासी रेवा

रानी—भूठ कहती हो रेवा, अब वे दिन गये। पक्षी अपने भाग्याकाश की पूरी ऊँचाई पर उड़ चुका। अब तो वह गिरता जायगा और कौन जाने पतन के पाताल की किन गहराइयों में जा पड़े ?

दासी—कातर न हों महारानी !

रानी—कातर ! (विषाद से मुसकराती है ।) अब कातर होने से क्या लाभ ! कभी समय था, जब मेरी नानक-सी कातरता से मंडोवर के महलों की अट्टालिकाएँ तक काँप उठती थीं। तब यह कातरता कुछ महत्व रखती थी। अब इससे क्या लाभ ? कुचला हुआ साँप विष घोलेगा तो स्वनः शक्तिहीन होगा, पंख-हीन पक्षी तड़पेगा तो अपने ही को घायल करेगा !

दासी—महारानी ! वे दिन फिर आ सकते हैं ।

रानी—नहीं रेवा, उड़ चुकी ! खूब उड़ चुकी ! अब और उड़ने को लालसा नहीं। सोवती हूँ, यदि विधि को यह पतन ही दिखाना था, तो उसने वह विशाल ऊँचा आकाश दिखाया ही क्यों ! यदि विष का कड़वा घूँट ही पिलाना था तो सुधामृत चखाया ही क्यों ?

दासी—कातर न हों महारानी !

रान्म—अब महारानी कहाँ ? जब महाराज मेरे थे, तब मैं महारानी थी ! अब तो वे गुहिल वंशीय रानी के इंगित पर नाचते हैं । अब वह सुन्दरता के पुजारी है । तब फिर मैं महारानी कहाँ ? जिसके देखते-देखते उसकी सौत का पुत्र, छोटा होते हुए भी, युवराज बना दिया जाय, जिसके महलों में महाराज कभी भूल कर भी पाँव न रखें, वह महारानी कहाँ ? वह एक दासी से भी गयी-बीती है । दासी और इस अधिकार-हीन रानी में अंतर ही क्या है ? दासियाँ भी महलों में रहती हैं, यह भी महलों में रहती हैं । बड़ी दासियाँ छोटी दासियों पर शासन करती हैं, यह भी करती हैं । इसे एक बड़ी दासी समझ लो ।

दासी—आप महारानी ही हैं । हंस पंखहीन भी हो जाय तो हंस ही कहाता है, कौआ नहीं कहाता । चलिए उन आमों की शीतल छाया में बैठें । आप स्वस्थ नहीं हैं ।

रानी—(दीर्घ-निश्वास छोड़कर) तू नहीं जानती रेवा, मेरे हृदय में कौन सी ज्वाला धधक रही है, कौन सी भंभा उठ रही है । (धीरे-धीरे) कुंवर चला गया—अपनी माँ को अकेली छोड़ कर, अपना भाग्य निर्माण करने के लिए चला गया । मैं उसे रोक तक न सकी.....

दासी—रणमल वीर राजपूत है महारानी ! सिंहासन बीज ही क्या है ? यह तो पुरुषों की शक्ति का खिलौना मात्र है ।

पुरुषों के हाथों राज्य बनते और बिगड़ते आये हैं। राज्य पुरुषों के लिए बने हैं, पुरुष राज्यों के लिए नहीं बने। कुँवर वीर राज-पूत हुए तो अपने अधिकार स्वयं प्राप्त कर लेंगे। अधिकार मिलते नहीं, लिये जाते हैं।

रानी—रेवा ! तुमने मेरे हृदय का ताप हर लिया। क्या ऐसा हो सकेगा ? क्या मैं फिर अधिकार-युक्त पुत्र का मुँह देख सकूँगी ? इस तप्त हृदय को फिर शान्ति मिलेगी ? चलो वहाँ आमों की छाया में बैठें।

दोनों आमों की छाया में जा बैठती हैं।

रानी—रेवा ! कुछ गाओ—कोई मीठा मादक गीत ! जिस से हृदय की जलन दूर हो जाय, जिससे मस्तिष्क का क्लेश मिट जाय; जो क्षण भर के लिए दुखों को भुला दे, विम्भृति के गर्त में विलुप्त कर दे।

रेवा गाती है—

पतन में अवसित है उत्थान !

चढ़-चढ़ गिरना, गिर-गिर चढ़ना, जीवन का आख्यान।

पतन में अवसित है उत्थान !

उठने पर क्यों खुश होता मन ?

गिरने पर तू क्यों रोता मन ?

जीवन तो बहता मोता, मन !

एक दशा में नहीं रहेगा, मान मान मतिमान !
पतन में अवसित है उत्थान !

रानी—कदाचित ठीक हो, किन्तु इस पतन में उत्थान होगा या नहीं, कौन कह सकता है ? (सामने देखकर) वे महाराणा आ रहे हैं, चलो चलें रेवा ।

दोनों उठकर धीरे-धीरे चली जाती हैं ।

छोटी रानी के साथ राव चूड़ावत का प्रवेश ।

राव—तो तुम्हारा यही निश्चय है । मेवाड़ के दोनों कुमारों की ख्याति अपने देश की दोनों सीमाओं को पार करके दूर दूर पहुँच चुकी है । उनकी तलवार का लोहा, यवन, जोगा दुर्गाधिप, मेदों के सरदार तथा दूसरे मान चुके हैं, किन्तु मैं चंड से राघव को अधिक पमन्द करता हूँ । मैंने उसकी सुन्दरता, उसके दान, उसकी वीरता और अन्य गुणों की कहानियाँ सुनी हैं, वह कलाकार है और चंड, वह तो राजपूत है—सीधा साफ़ सोलह आने राजपूत—बात का धनी, साहसी और निडर । उसमें रस होगा, मैं नहीं कह सकता । हाँ ! उसमें कर्तव्य है, पत्थर की तरह कड़क*, चट्टान की भाँति दृढ़ ! अब सोच लो !!

रानी—क्या राघव मेवाड़ के राजा होंगे ।

राव—वह चंड से छोटा है । युवराव तो चंड ही है । राघव को, हो सकता है, अच्छी जागीर मिल जाय, परन्तु मेवाड़

का भावी राणा तो चंड ही होगा ।

रानी—तो हंसाबाई का विवाह उन्हीं से हो ! वे राजपूत हैं, यही यथेष्ट है । वे ललित-कलाओं के इतने पोषक न हों, किन्तु राजपूत तो वे सच्चे हैं, और फिर वे केवल जागीरदार न होंगे, मेवाड़ के भावी राणा होंगे ।

राव—जैसी तुम्हारी इच्छा ! मैंने तुम्हारे इस प्रस्ताव के लिए क्या नहीं छोड़ा ? अपना मान नहीं छोड़ा ? अपनी बड़ाई नहीं छोड़ी ? फिर अपनी रुचि छोड़ने में भी मुझे कोई संकोच नहीं ।

रानी—महाराज, आप नारियल भिजवाइए ! मैंने सुना है, वे न्याय-प्रिय, नीति-कुशल और प्रजावत्सल हैं । राणा हुए तो अपने कुल का नाम रौशन कर देंगे । मेरी हंसाबाई ऐसे ही अधिपति की महारानी होगी । मैं स्वयं अधिकार की पुजारिन हूँ महाराज ! और अपनी लड़की को दूसरों की ओर हाथ फैलाते नहीं देखना चाहती । आपका मान भी इसमें कम न होगा महाराज ! मेरी बात का मान रखिए ।

राव—मैं जाता हूँ ! आज ही मंत्री को नारियल भेज देने का आदेश दे दूँगा ।

प्रस्थान

रानी—रणमल ! तू जा, मेवाड़ का आश्रय ले, परन्तु वहाँ

भी तुम्हें इसी रानी की लड़की के अधीन रहना पड़ेगा । तू क्रोध से तिलमिला कर चला गया । तूने कहा—मैं अधिकार लूँगा, मैं बदला लूँगा—हाँ ! बदला लेना । तुझे भी पता चल जायगा कि तारा से बैर ठानना हँसी-खेल नहीं !

तेज़ो से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

पहाड़ की एक कन्दरा
 बाहर नन्दी की मूर्ति बनी है,
 कन्दरा के अर्ध-गोलाकार मुहाने में एक
 बड़े आकार का घंटा लटक रहा है
 झोंटिंग भट्ट और धनेश्वर पण्डित ।

धनेश्वर—अँधेरा गहरा हो रहा है; आकाश मलिन हो गया
 है; सूरज ढूँध रहा है ।

झोंटिंग—काली रात होगी—अंधेरी काली रात !

धनेश्वर—और चाँद भी न होगा, अविवेक के बादल उस पर
 छा रहे हैं ।

झोंटिंग—फिर क्या जाने क्या हो ?

धनेश्वर—कौन जाने क्या हो ?

झोंटिंग—अच्छा नहीं होगा, मैंने कह दिया था, मैं कहे देता
 हूँ—अच्छा नहीं होगा ।

धनेश्वर—(आतंक से) अच्छा नहीं होगा ! हाँ—अच्छा नहीं
 होगा ।

झोंटिंग—कुछ भी हो, अब जब अज्ञान बुद्धि पर शासन
 जमा रहा है, हमें उसका साथ न देना चाहिए, अपना कर्त्तव्य
 पालन करना चाहिए ।

धनेश्वर—हाँ, हमने सिसोदियों का नमक खाया है। इस समय जब वे अपना भला बुरा न सोचकर भूठी मर्यादा, कुल की भूठी प्रतिष्ठा के लिए मर रहे हैं, हमें उनकी रक्षा करनी चाहिए, उन्हें इस विपत्ति से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

मोटिंग—(निराशा से) किसी ने भी न सुना, कुमार, युवराज, राणा, सब के पास जाना व्यर्थ हुआ।

धनेश्वर—हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। अबसर पर उनको सावधान कर दिया। अब भी हम अपना कर्त्तव्य पूरा करेंगे। आने वाली अज्ञात विपत्ति सं मेवाड़ को बचाना होगा...

मोटिंग—जिसकी ओर शास्त्र संकेत कर रहे हैं, जो अवश्य आयेगी, जो रोके न रुकेगी !

धनेश्वर—परन्तु भगवान् एकलिंग का जाप करने से उसका प्रभाव तो कम हो जायगा। सम्भव है ग्रहों का कोप शांत हो जाय, विपत्ति आकर टल जाय।

मोटिंग—मैं जाप करूँगा। उस समय तक जाप करूँगा, जब तक मेवाड़ के आकाश से यह बादल छँट नहीं जाते (ऊपर देखकर) विपत्तियों की घटाएँ घिर आयी हैं। आशंकाओं की आँधियाँ चल रही हैं और इनमें हृदय ऐसे काँप रहा है जैसे दो शेरों में भयभीत मृग।

बादल गरजते हैं, बिजली चमकती है,

धनेश्वर भय से देखते हैं।

पटाक्षेप

द्वितीय अंक

१

नेपथ्य से गाने की ध्वनि

तेरे ही कारण भूपाल,

उन्नत हुआ जननि का मस्तक, हुआ पुनः मेवाड़ निहाल
तूने सौंच शत्रु का लोह, किया देश रुपा सा लाल
तूने भरा पुनः माता का, सुख, वभव, गौरव में थाल
लाखा जी के लाल लावनों से डगना है मेरेव काल
आज हिमालय से ऊँचा है, माँ मेवाड़ भूमि का भाल
तेरे ही कारण भूपाल

लक्ष्मि—मंत्री ! आज मैं बाह्य स्थिति पर विचार करना चाहता हूँ। देश को सुधारने की ओर आजकल हमारा इतना ध्यान रहता है कि बाहर क्या हो रहा है, इस बात को हम भूल से गये हैं।

प्र० मंत्री—महाराज, मेवाड़ की विजयों से शत्रुओं के दाँत खट्टे हो गये हैं और वह कुचले हुए साँप की तरह विष चाहे घोले, पर फन उठायेंगे, इस बात की सम्भावना नहीं।

लक्षसिंह—हमारी सीमाओं पर तो कोई गड़बड़ नहीं ?

प्र० मंत्री—नहीं महाराज ! सब जगह शान्ति है, धनी-निर्धन सब बेखटक अपना काम कर रहे हैं; शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं !

लक्षसिंह—कहीं तीर्थों पर यात्रियों को कोई असुविधा तो नहीं होती ? यात्री त्रिस्थली* में बे-रोक-टोक दर्शन तो कर सकते हैं ?

प्र० मंत्री—काशी और प्रयाग से तो कोई समाचार नहीं मिला महागात्र ! हाँ सुना है कि गया को जाने वाले यात्रियों को फिर तंग किया जा रहा है। वहाँ के मुसलमान शासक उन्हें फिर कर देने के लिए विवश करते हैं।

लक्षसिंह—हमने इतना स्वर्ण, हाथी घोड़े और चाँदी देकर जो सन्धि की थी, वह क्या व्यर्थ हुई ?

प्र० मंत्री—महाराज ! आपने सन्धि तो फिरोजशाह तुगलक से की थी, परन्तु उसके देहावसान के पश्चात् दिल्ली में अधेर मचा हुआ है। तैमूर के भयानक आक्रमण के बाद दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर रह गया है, इस लिए स्थानीय शासक यात्रियों को तंग करते हैं।

लक्षसिंह—तैमूर के सम्मुख रण-क्षेत्र से भाग जाने वाले इन भगोड़े मुसमानों के विरुद्ध मुझे फिर शस्त्र उठाने पड़ेंगे।

* काशी, प्रयाग और गया

मैं चाहता था, गया का पवित्र-स्थान यवनों के रक्त में अविवृत न हो। (मोचकर, अपने आप) तो भी एक बार और प्रयास करूँगा और यदि वे इस पर भी न मानें तो उन्हें इस उद्वेगता का उचित दंड दूँगा। (मंत्री से) शासक को दिव्योक्ति यह यात्रियों को तंग न करे। उसे धन की प्रावश्यकता है तो हमसे ले ले।

प्र० मंत्री—महाराज, यदि वे न मानें...

लक्ष्मिह—तो पुरानी प्रथा के अनुसार मैं उस पर चढ़ाई करूँगा। इन अत्याचारियों को गया की पवित्र भूमि में निहत्त दूँगा! काश! दूसरे लोग भी इस काम में हमारी सहायता करते!

दरबान का प्रवेश

दरबान—महाराज ! मंडोवर से एक ब्राह्मण नारियल लाये हैं।

प्र० मंत्री—जाओ उन्हें सम्मानपूर्वक ले आओ।

लक्ष्मिह—(सूँधों पर ताव देते हुए सुसकरा कर) गुराज के लिए होगा, हम बूढ़ों के लिए नारियल कोन लायगा।

सब हँसते हैं।

धनेश्वर राय—महाराणा बधाई हो ! आज मेरी चिर-संचित अभिलाषा पूरी हुई। राठौर और मिसोदिया वंशों में वैमनस्य दूर हुआ। परमात्मा करे, यह नाता चिरस्थायी रहे और दोनों प्रदेशों में मख शान्ति तथा सम्पन्नता लाये !

सेवकों के साथ ब्राह्मण का प्रवेश, ब्राह्मण नारियल

का और सेवक रत्नों का थाल उठाये हुए हैं ।

मंत्री उठकर ब्राह्मण का स्वागत करता है ।

आगत महाराणा का अभिवादन करते हैं ।

लक्ष्मि—कहिण ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! मंडोवर से किसका नारियल लाये ?

ब्राह्मण—महाराज की प्रतिष्ठा दिन दूनी रात चौगुनी हो ! महाराज, मैं मंडोवर की राजकुमारी हंसाबाई का नारियल लाया हूँ ।

युवराज चंड प्रवेश करते हैं

और अपने स्थान पर बैठ जाते हैं ।

लक्ष्मि—युवराज के लिए लाये हो न ? मैंने तो पहले ही कहा था कि हमारे लिए अब नारियल कौन लायेगा ? हमें इन खिलौने की क्या आवश्यकता है ?

सब हँसते हैं ।

ब्राह्मण—(झेंपकर) युवराज के लिए ।

लक्ष्मि—हमें स्वीकार है ।

ब्राह्मण युवराज को तिलक लगाने

के लिए आगे बढ़ता है ।

युवराज—(उठकर) किन्तु मुझे स्वीकार नहीं !

ब्राह्मण डर कर रुक जाता है ।

लक्ष्मि—क्यों वत्स ?

युवराज—(ब्राह्मण से) आप निलक पिता जी को लगाइए

सब आश्चर्य से चौंकते हैं, किन्तु स्तब्ध बैठे रहते हैं ।

युवराज—हंसाबाई मेरी माता हो चुकीं ।

लक्ष्मसिंह—पागल हो गये हो क्या ?

युवराज—मैं पागल नहीं पिता जी ! आपने जिस नारी के लिए अपनी इच्छा प्रकट की, उसे मैं कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ?

लक्ष्मसिंह—इच्छा ! मैंने ?

युवराज—आपने कहा जो—‘हम बूढ़ों के लिए अब कौन नारियल लायगा ?’

लक्ष्मसिंह निरुत्तर होकर मंत्रों

की ओर देखते हैं ।

प्र० मंत्री—युवराज ! महाराणा ने यह बात तो हँसी में कही थी ।

युवराज—मैंने उसे हँसी नहीं समझा अमात्यवर ! अब मैं यह नारियल स्वीकार न करूँगा ।

प्र० मंत्री—यह कैसे हो सकता है युवराज ! हँसी-हँसी में.....

युवराज—मन्त्रिवर ! हँसी-हँसी में यदि मैं किसी को अपनी माँ कह दूँ, तो क्या मैं उस से किसी और नाते की कल्पना कर सकता हूँ ?

धनेश्वर—शिव, शिव !

प्र० मंत्री—युवराज, लड़कपन न करो। हँसी की बात को गम्भीरता में नहीं लेना चाहिए। इसके परिणाम पर विचार करो ! विवेक और बुद्धि.....

युवराज—मैं नहीं जानता। मैं कुछ नहीं जानता। मैंने ऐसा ही समझा है और रिश्ते की पवित्रता को मैं हँसी-मजाक पर निछावर नहीं कर सकता। जिसे मैंने अपने मन में माँ के रूप में देखा, उसे किस भाँति पत्नी रूप में देख सकता हूँ ? पितृजी अब विवाह करें तो करे, मैं नहीं कर सकता।

प्र० मंत्री—उनकी आयु अब विवाह करने का है ?

लक्ष्मिह - युवराज !

युवराज—हाँ पिता जी !

लक्ष्मिह—मैंने हँसी में वह बात कही थी, मेरी यह इच्छा कैसे हो सकती है ?...तुम नहीं समझ सकते !

युवराज—मैं कह चुका हूँ पिता जी ! मैं रिश्ते की पवित्रता को हँसी मजाक पर कदापि निछावर नहीं कर सकता।

लक्ष्मिह—(ज़रा क्रोध से) तो तुम वह नारियल स्वाकार न करोगे ?

युवराज—मैं विवश हूँ।

लक्ष्मिह—(और भी क्रोध से) नारियल वापस नहीं जा सकता।

युवराज—(चुप रहता है ।)

लक्षसिंह—(क्रोध तथा जोश से) इस से न केवल राव चूड़ावत का अपमान होगा, वरन दोनों राज्यों में देर से दबी हुई मनोमालिन्य की आग धधक उठेगी । यही नहीं, राव रखमल क्या समझेगे ? क्या वे अपने आपको अपमानित, तिरस्कृत महसूस न करेंगे और क्या अपने अतिथि का अपमान करने से मेवाड़ का गौरव बढ़ेगा ?

युवराज—(चुप रहता है ।)

लक्षसिंह—(चाँख कर) तो तुम नारियल स्वीकार न करोगे ?

युवराज—(नम्रता से) नहीं ?

लक्षसिंह—(उर्सी स्वर में) तो मैं करूँगा ।

युवराज—मुझे इसमें प्रसन्नता होगी ।

लक्षसिंह—इसका परिणाम सोच लिया ?

युवराज—कर्त्तव्य के रास्ते में राजपूत परिणाम की चिन्ता नहीं करता ।

लक्षसिंह—हो सकता है, तुम्हें सिंहासन से हाथ धोने पड़ें ।

युवराज—मैं सेवा में ही स्वर्ग समझूँगा ।

प्रणाम करके तेज़ी से प्रस्थान

लक्षसिंह—(ब्राह्मण से) ब्राह्मण देवता ! आप दो-चार दिन तक प्रतीक्षा करें, चंड अभी बच्चा है और सोच संभव को बचपन

में दखल नहीं होता । दो-चार दिन तक मैं समझ जायगा ।

सेवकों के साथ ब्राह्मण प्रस्थान

लक्षसिंह—आप लोग उसे समझायें अमात्य ! और मुझे एकान्त में छोड़ दें, मेरा मस्तिष्क जैसे खौल रहा है, समझ और सोच शक्तियाँ जैसे जवाब दे गयी हैं । कुछ नहीं सूझ पाता, कुछ नहीं समझ पाता !

प्र० मंत्री—(जैसे अपने आप से) क्या सोचा था और क्या हो गया !

पृथ्वीराज—(जैसे अपने आप से) आशा का लहलहाता सरोवर मृग-मारीचिका सिद्ध हुआ ।

प्रस्थान

धनेश्वर—(जैसे अपने आप से) क्या यह सुख लाया, शान्ति लाया ? विधो की कैसी विडम्बना है ! किन्तु भोटिंग ने कहा था, कीर्तिमान ने कहा था.....

प्रस्थान

सब चले जाते हैं, राणा लक्षसिंह बेचैनी से घूमते हैं ।

लक्षसिंह—(रुककर जैसे अपने आप से) चंड ! तुम अपने पिता की इच्छा का इतना सम्मान करते हो, मुझे इस पर गर्व होना चाहिए; पर नहीं, निरीह बालिका के जीवन का प्रश्न है ।

फिर घूमते हैं ।

—(फिर रुककर) तो क्या नारियल वापस कर दूँ ? नहीं, मेवाड़ और मंडोवर के मध्य लोहे की एक दीवाल खड़ी हो

जायगी, जो तोड़े न तोड़ी जा सकेगी। और फिर संसार क्या कहेगा ? मेवाड़ के नारियल मुड़ गया—न, मैं यह सहन न कर सकूँगा। ओह ! चंड, चंड ! तूने मुझे किस कठिन परिस्थिति में डाल दिया ?

फिर घूमते हैं ।

पट-परिवर्तन

रानी पद्मिनी के महलों का एक उद्यान ।

हेमवती सहेलियों के साथ प्रवेश करती है ।

हेमवती—यह स्थान मुझे कितना प्रिय है । इसके साथ बचपन की कितनी स्मृतियाँ लिपटी पड़ी हैं । ठंडी-ठंडी हवा में लम्बे-लम्बे साँस लेना, सुन्दर फूलों पर मँडराते हुए भ्रमरों की गुंजार सुनना और रंग-बिरंगी तितलियों का नृत्य देखना ! मैं जब भी यहाँ आती हूँ, अपने इस प्रिय स्थान को देखने के लिए आतुर हो उठती हूँ ।

एक सखी—तो आओ यहीं आमों की घनी छाया में डेरा डाल दें ।

हेमवती - (मन्दिर की ओर निनिमेष देखती हुई) और यह युवराज के अनुरोध पर बनाया गया रानी पद्मिनी का मन्दिर—कितना भव्य, कितना सुन्दर, कितना लालित्यपूर्ण है ! मैं उन दिनों की कल्पना करती हूँ, जब विध्वंसकारियों के हाथ इन खंडहरों को धूल पाये थे और रानी पद्मिनी इस मन्दिर की पूजा को आती थीं । (मुड़ कर सखी से) देखती हो सखि, वसन्त सूर्य ने अपनी सुनहरी किरणों से इस दृश्य पर कैसा जादू फूँक दिया है ? सामने ऊँचे, लम्बे, हरियाने पहाड़, सिर पर विशाल नीलाम्बर और नीचे नील निर्मल जल-राशि, फिर इन सब को स्वर्णदान

देती हुई वसन्त के सूर्य की भीठी-भीठी स्नेहमयी धूप !
युवराज ने इन खंडहरों के जीर्णोद्धार का निश्चय करके सच ही
एक बहुत अच्छा काम किया है ।

दूसरी सखा—तुम किधर एकटक, निनिमेष देख रही हो
राजकुमारी ! आओ कुछ सुस्ता ल, थक गयी हैं, कुछ आराम
कर ले ।

हेमवती—नहीं, मुझे बहुत दिन यहां नहीं रहना है । जाने से
पहले मैं इन सब को भली-भाँति देख जाना चाहती हूँ । इनकी
स्मृति मुझे प्रायः बेचैन कर किया करती हैं, चित्ताँड़ खाँच लाती
है, इन्हें देखे बिना मैं आराम न कर सकूंगी । चलो, वह महल
भी देख आये ।

तीसरी सखा—राजकुमारी, चलो अब फिर आयेगे ।

हेमवती—प्रब्र यह पहुँच कर वापस जाना मैं नहीं चाहती ।
मैं तो सब देख कर ही चलूंगी ।

चौथी सखा—इन टूटे फूटे खंडहरों में क्या रखा है, जो तुम
इन्हें देखने के लिए इतनी लालायित हो ?

हेमवती—(उसकी ओर मुड़कर) क्या कहती हो, इनमें क्या
रखा है ? अब यह भी मुझे तुम लोगों को बताना होगा ! इन
भग्न-खंडहरों में वीरता और शौर्य का वह इतिहास छिपा
पड़ा है जो आज भी राजपूताने के रक्त को गर्म रखता है । यह
खंडहर न हों, तो महारावल रत्नसिंह और रानी पद्मिनी के

बलिदान की अद्वितीय कहानी केवल कपोल-कल्पना बनकर रह जाय ।

पहली सखी—चलो राजकुमारी, इनके महत्व को ये मूर्ख क्या समझेंगी ।

हेमवती—मैं तुम्हें क्या बताऊँ इनका महत्व कितना है ? ये खंडहर हमें क्या बताते हैं ? सुनने वाले कान हों तो इन खंडहरों के टूटे-फूटे पत्थर, इन महलों की जली-फुँकी भित्तियाँ हमें बतायेंगी कि हमारा कर्तव्य क्या है; बतायेंगी कि धर्म और मर्यादा के आगे धन और ऐश्वर्य का कोई महत्व नहीं; बतायेंगी कि मर्यादा की रक्षा के लिए मेवाड़ के वीर राणा ने किस प्रकार अपने हाथों अपने जिगर के टुकड़ों को अपने ग्यारह वीर पुत्रों को मृत्यु की प्रबल वह्नि में भोंक दिया, किस भाँति स्त्रीत्व की रक्षा के लिए मेवाड़ की रानी ने सहस्रों दूसरी वीरांगनाओं के साथ जौहर की ज्वाला का आलिंगन किया ?

सब चकती हैं .

हेमवती—(मुड़कर) सुकेशी कहाँ है ? शायद वह धाय के साथ उधर चली गयी है ।

एक सखी—(आवाज़ देती हुई) सुकेशी, सुकेशी !

हेमवती—लो वह आ रही है । आओ चलें, हमारे पीछे आ जायेगी ।

सब चली जाती हैं ।

सुकेशी धाय का हाथ पकड़े प्रवेश करती है ।

सुकेशी—वे इधर गयी हैं, इधर गयी हैं माँ ! आओ हम भी
उधर चले ।

धाय का हाथ पकड़ कर खींचती हुई ले जाती है ।

पट-परिवर्तन

रणमल का निवास-स्थान

रणमल और बाघसिंह

रणमल—क्या कहा बाघसिंह ! क्यों प्रसन्न हूँ ? इस से बढ़ कर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ? ओह ! आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, उल्लास से मरा जा रहा हूँ ।

मदिगपान करता है ।

बाघसिंह—प्रसन्न ! मैं कहता हूँ आपको दुखी होना चाहिए । आपका आश्रय छिना जा रहा है और आप खुशियाँ मना रहे हैं ?

रणमल—(सूँझों पर ताव देता हुआ) आश्रय कैसा बाघसिंह ! मैं स्वयं अपना अवलम्ब हूँ ! मैं किसी पर आश्रित नहीं । सिपाही हूँ और सिपाही बन कर यहाँ आया हूँ । फिर सैनिक को सैनिक बन कर रहने में दुख कैसा ? किन्तु यह देखना—किसी दिन मेवाड़ और मंडोवर का ताज इसी सिपाही के मस्तक को मुशोभित कर रहा होगा ।

बाघसिंह—कुमार आप बहुत पी गये हैं । होश में नहीं हैं ।

सुराही इत्यादि उठाकर बन्द कर देता है ।

रणमल—होश मे नहीं हूँ ! शायद मैं आज जितना होश में हूँ,

उतना कभी नहीं हुआ। मैं कहता हूँ यदि युवराज अपने हठ पर अड़े रहे और हंसाबाई का विवाह लक्ष्मिह से हुआ तो मुझसे बढ़कर भाग्यवान दूसरा कोई न होगा। मैं हंसाबाई के दोष जानता हूँ। वह बहुत भोली है। मुझे सौतेला भाई नहीं समझती। माँ के ईर्ष्या-द्वेष से उसे कोई काम नहीं। ऐसे भोले लोगों को राजनीति की बिसात पर गोटें बनाना सुलभ है। बाघसिंह, तुम नहीं समझते। मैं बहुत दूर की सोच रहा हूँ।

बाघसिंह—मैं कुछ नहीं समझा; आप बहुत पी गये हैं।

रणमल—ओह! यह विवाह हो जाय। फिर मैं देखूँगा—किस तरह छोटी माँ मेरा अधिकार छीन कर, उस नन्हें से बच्चे को मंडोवर का अधिपति बनाये रखती है ?

बाघसिंह—और मैं कहता हूँ—अब आपको किसी दूसरे घर की राह देखनी चाहिए। आखिर हंसाबाई लड़की तो उसी माँ की है, जिसने आपको देश से निकल जाने पर विवश किया था। यदि युवराज से हंसाबाई का विवाह होता तो खैर ! उसके रानी होने की सम्भावना इतनी सन्निकट न होती, किन्तु अब तो विवाह होते ही वह मेवाड़ की महारानी होगी और आप क्या होंगे ? उसी गुहिल-वंशिय रानी की लड़की के दास। जब चाहेगी, आपको यहाँ से खदेड़ देगी।

रणमल—दास ! हा, हा, हा ! (अट्टहास करता है।) दास !! तुम बाघसिंह, एक दम भोले हो। लड़ना-मात्र जानते हो, बस ! तुम मनुष्य के स्वभाव की गहराइयों को क्या समझो; तुम हंसाबाई को क्या समझो; राजनीति में जीभ की मिठास से जो काम निकलते हैं, उन्हें तुम क्या समझो ? पटुता और चतुराई से राजनीति में जो काम निकाले जा सकते हैं, सहानुभूति और मित्रता का दाना बिछा कर किस तरह पक्षी को फाँसा जाता है, यह सब तुम क्या जानो ? लाओ सुराही दो। यदि आज के दिन न पौ, तो और कब पीऊँगा ?

बाघसिंह—मैं राजनीति नहीं जानता, इन सब चालों को नहीं जानता, पर एक बात अच्छी तरह जानता हूँ—यह नशे की लत अच्छी नहीं कुमार ! किसी-न किसी दिन यह आपको ले डूबेगी।

रणमल—नशे की लत ! बाघसिंह इस संसार में कौन नशे से रहित है ? किसी को धन का नशा है, किसी को जन का नशा है, किसी को प्यार का नशा है, किसी को अधिकार का नशा है ! सब मस्त हैं—अपने-अपने रंग में, अपनी-अपनी खाल में। नशा न हो तो संसार नीरस हो जाय, इसमें स्पन्दन न रहे, प्राण न रहें।

बाघसिंह--(हँस कर) शायद नशे में आदमी दार्शनिक भी हो जाता है।

रणमल—(ठहाका मारकर) दार्शनिक ! क्या खूब कहा तुम ने, आज मैं प्रसन्न हूँ और आज दार्शनिक बनने मे भी आनन्द आता है ।

उठ कर खिड़की खोलने लगता है ।

सेवक प्रवेश करता है ।

सेवक—कुमार ! युवराज पधारें है ।

रणमल—जाओ सम्मान सहित ले आओ ! (बाघसिंह से) अब देखना, मैं नशे में हूँ ? आज की बात पर ही जीत और हार निर्भर है और मैं जानता हूँ, मुझे क्या करना है ।

युवराज चंड का प्रवेश ।

दोनों खड़े होकर अभिवादन करते हैं ।

रणमल की आकृति गम्भीर हो जाती है ।

रणमल—कहिए युवराज ! आज किस प्रकार इस गरीब पर कृपा की ?

चंड—मुझे आप से एक बात के सम्बन्ध मे परामर्श करना है ।

रणमल—दास प्रस्तुत है ।

चंड—आज प्रातः दरबार मे जो कुछ हुआ, आप वह जानते हैं ?

रणमल—मैं देर से पहुँचा था, मंत्री की ज़बानी सब कुछ मालूम हुआ । आपकी पितृ-भक्ति अद्वितीय है । आपकी प्रतिज्ञा ने भीष्म-प्रतिज्ञा की याद दिला दी ।

चंड—(खुशामद से अप्रभावित) क्या ऐसा हो सकता है, आपको दुख तो न होगा ?

रणमल—क्या ?

युवराज—पिता जी से मंडोवर कुमारी का विवाह ! सच जानिए, मुझे आपका अपमान अभीष्ट न था। मेरी विवशता आप समझ गये होंगे।

रणमल—हाँ मैं समझता हूँ। आप विवश थे, किन्तु आप ने बड़ा कठोर प्रण कर लिया। आप सिंहासन के अधिकार तक से हाथ धोने को तैयार हो गये।

युवराज—अपनी प्रतिज्ञा के आगे मैं सिंहासन को कोई महत्व नहीं देता।

रणमल—चाहे आपकी इस अद्वितीय पितृ-भक्ति का सब से कठिन प्रहार मुझी पर होगा, किन्तु फिर भी मैं कहूँगा, आप महान हैं, हम आपकी चरण-रज की बराबरी भी नहीं कर सकते।

युवराज—आप बताइए यह हो सकेगा ? इस नाते में आपको तो कोई आपत्ति न होगी ?

रणमल—हंसाबाई अभी बालिका है।

युवराज—वह मेवाड़ की महारानी बनेगी। हम सब उसके अनुचर होंगे।

रणमल—किन्तु भविष्य ! आजन्म दासता.....

युवराज—उनका पुत्र मेवाड़ का महाराणा होगा । वे राजमाता बनेंगी ।

रणमल—तो आप सिंहासन का अधिकार छोड़ने का निश्चय कर चुके हैं ?

युवराज—आप कहिए, ऐसा हो सकेगा ? मैं सिंहासन की परवाह नहीं करता !

रणमल—पिता जी को कैसे विश्वास होगा ?

युवराज—विश्वास कैसा ?

रणमल—शायद वे आश्वासन चाहें ।

युवराज—आश्वासन ?

रणमल—यही कि यदि हंसबाई के पुत्र हुआ तो वही राज्य का अधिकारी होगा ।

युवराज—मैं भगवान एकलिंग के सामने शपथ ले लूंगा ।

रणमल—आप महान हैं, किन्तु सोच लीजिए—आप कितना बड़ा प्रण करने जा रहे हैं !

युवराज—कहिए ! यदि इसके बाद आपको आपत्ति न हो ? मैं अपने कर्त्तव्य के आगे इस से बड़ा प्रण कर सकता हूँ ।

रणमल—हाँ ! यदि इतना हो सके.....आप पिता जी को लिख दीजिए ।

युवराज—उन्हें मैं आज ही लिखूँगा । आप को तो कोई आपत्ति नहीं ?

रणमल—यदि मेरी बहिन मेवाड़ की रानी बने, मेवाड़ की

राजमाता बने, तो मुझे क्या आपत्ति होगी । किन्तु युवराज ! आप फिर सोच लें ।

युवराज—मैं सोच चुका हूँ ।

चलने को प्रस्तुत होते हैं । रणमल और बाधसिंह

उन्हें दरवाजे तक छोड़ने जाते हैं । युवराज के

चले जाने पर बाधसिंह कपाल टोंकता है ।

बाधसिंह—आपको क्या हो गया है । नशे में.....

रणमल—क्या बक रहे हो ?

बाधसिंह—स्वयं विपत्ति को निमन्त्रण दे रहे हैं आप ।

रणमल—चुप रहो, मुझे सोचने दो ।

(कमरे में धूमता है ।)

—कलम दवान लाओ !

बाधसिंह कलम-दवात लेने जाता है ।

रणमल—(अपने आप) आधिकार के क्षेत्र में एक बार फिर बाजी लगाऊंगा । जीत गया तो सब कुछ अपना है, नहीं तो जद्दाँ बह गया. वहाँ यह भी सही ।

फिर धूमता है । बाधसिंह कलम दवात ले आता है ।

रणमल जल्दी-जल्दी एक चिट्ठी लिखकर बाधसिंह

को देता है ।

—जितनी जल्दी हो सके यह चिट्ठी पिता जी को पहुँचाओ । तंज घोड़ा ले लेना । युवराज जो चिट्ठी भेजें, उस से

पहले यह पहुँच जाय !

(बाधसिंह खड़ा रहता है ।)

रणमल—यों खड़े क्या देखते हो ? मैं होश में हूँ । एक दो घूट क्या, सुराहा कट से उड़ेल लूँ, तो भी होश नहीं खो सकता—और फिर ऐसे जीवन मरण के मामले में ! जाओ ! आने पर तुम्हें सब कुछ बना दूँगा । अभी इतना जान लो कि यदि तुमने यह चिट्ठा समय पर पहुँचा दी तो मैं एक दिन मेवाड़ और मंटीवर दोनों का स्वामी हो सकता हूँ ।

(बाधसिंह जाना चाहता है ।)

रणमल—गुनो ! (पास जाकर धीरे-धीरे समझाते हुए) माता जी से कहना—यह भट्ट सरदार जोधाजीत से कहें कि वे आगामी वर्षों में पाँच पाँच, छः छः करके सैनिक यहाँ भेजने रहें, जो यहाँ की सेना में प्रवेश करने का प्रयास करें ।

(बाधसिंह जाना चाहता है ।)

रणमल—और गुनो, (धीमे स्वर में) देखा, सब बात गुप्त रखना ! पिता जी के अतिरिक्त किसी का यह चिट्ठा न देना और माता जी के सिवा किसी से यह बात न कहना । जाओ, मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करूँगा ।

बाधसिंह चला जाता है । रणमल पुनः सुराही निकालता

है और प्याले में मदिरा डालता है ।

—(अपने आप) बाजी लग गयी है छोटी माँ ! देखू, तुम्हारी जीत होती है या मेरी । जीत गया तो अपने अपमान का बदला

ब्याज समेत चुका दूँगा और जिसको तुमने मूर्ख, अकर्मण्य और अपदार्थ कहा था, वह कितना नीतिज्ञ है, कितना साहसी है, अधिकार की बाज़ी में कितनी होड़ लगा सकता है, वह सब दिखा दूँगा। और यदि हार गया.....

(पीता है ।)

—किन्तु नहीं, जीतूँगा, अवश्य जीतूँगा !

(फिर पीता है ।)

(पट-परिवर्तन)

मेवाड़ का राज-भवन
राणा लक्षसिंह और रानी

लक्षसिंह—तुम समझाओ उसे रानी ! मैं तो हार गया हूँ । तुम उसकी माँ हो, तुम्हारे उपदेशों ने उसे हठी, सत्यव्रती, सच्चा राजपूत बना दिया है, सोचो—मैं अब विवाह करने जाऊँगा ? क्या मैं विवाह के योग्य हूँ ?

रानी—क्यों महाराज, विवाह के योग्य क्यों नहीं, अभी तो.....

लक्षसिंह—रानी हँसी न करो, तुम नहीं जानती इस समय मेरे मस्तिष्क में कौन सा तूफान उठ रहा है । मैं—सात बच्चों का बाप, बुद्धिमान, कर्त्तव्य परायण, वीरपुत्रों का पिता—अब इस आयु में विवाह करने जाऊँगा ! अब तो रानी ! मुझे युद्ध में जाना चाहिए । घर में कायरों की मौत मरने की अपेक्षा यवनों के विरुद्ध युद्ध में वीरगति प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए । और मुझे कहा जा रहा है—मैं विवाह करूँ ! तुम उसे समझाओ !

रानी—मैं उसे क्या समझाऊँ महाराज, क्या वह दूध पीता बच्चा है, क्या वह अपने कर्त्तव्य को नहीं समझता ।

लक्षसिंह—कर्त्तव्य ! रानी ! तुम ने कभी इस कर्त्तव्य का

परिणाम सोचा है ? कभी सोचा है, वह कितना भयानक हो सकता है । यह सब भूठी मर्यादा है, भूठी कर्त्तव्य है ।

रानी—महाराज ! राजपूतों ने अपनी बात की टंक रखी है, आप उस भूठी मर्यादा कहते हैं ! इस दृष्टि-कोण से तो पिता के प्रण को पालने के लिए भगवान राम का वन को जाना, वृद्ध पिता को दुख और चोभ में छोड़कर भी वन को जाना, मूर्खता थी, भूठी मर्यादा की रक्षा थी । पितामह भीष्म का अपने पिता की इच्छा के लिए आयु-पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर अपने प्रण पर चट्टान की भाँति खड़े रहना भी विवेक-हीनता थी, दम्भ था । महाराज ! क्या बात पर मिट जानेवाले पितृ-भक्त भगवान राम और भीष्म मूर्ख थे ?

लक्ष्मि—तो क्या मैंने हँसी में यह बात नहीं कही, क्या मैं विवाह करना चाहता हूँ ?

रानी—राजा दशरथ भी न चाहते थे कि राम वन को जायँ, राजा शान्तनु की भी इच्छा न थी कि उनका प्रिय देवव्रत इतना भीष्म-व्रत धारण करे । यह तो उन पितृ-भक्तों की कर्त्तव्य-परायणता थी कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझते हुए ऐसे व्रत लिये और विपत्तियों का सामना करते हुए भी उनका पालन किया । मेरा चंड भी वैसा ही दृढ़-प्रतिज्ञ, वैसा ही सत्यवती है—महाराज ! आप उसके कर्त्तव्य-पालन को

अपनी बात से छोटा न कीजिए। क्या मैंने एक दिन न कहा था, कि मेरे पुत्र भी कम पितृ-भक्त नहीं और अवसर पड़ने पर अपने पिता की साधारण सी इच्छा के लिए अपना सर्वस्व तक बलिदान कर सकते हैं।

लक्ष्मिह—और मैं यदि नारियल अम्बीकार कर दूँ ?

रानी—शौक से कर दें, क्या आपको लाज न आयेंगी ? क्या मेवाड़ के राज-गृह में आया हुआ नारियल किसी दूसरे के यहाँ जायगा ? क्या मेवाड़ के राणा एक स्त्री को अपनी बट कर, भरे दरबार में कह कर—मैं विवाह करूँगा—उसे त्याग देंगे ? उनके गौरव को धक्का न लगेगा, उनके अभिमान को आँच न आयगी ?

लक्ष्मिह—जानती हो, इसका परिणाम क्या होगा ? गृह-युद्ध, ईर्ष्या, द्वेष.....

रानी—मेरे पुत्र पर आप यह अभियोग नहीं लगा सकते। वह यदि प्रतिज्ञा करना जानता है तो उसे प्राणपण से निभाना भी जानता है।

लक्ष्मिह—तो तुम चाहती हो, मैं विवाह करूँ ?

रानी—हाँ ! अपने पुत्र की बात रखने के लिए, उसकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए, आपको यह कड़वा घूँट पीना ही चाहिए।

लक्ष्मिह—रानी तुम ऐसी बातें कर रही हो, जैसे इस बात

का तुम से कुछ सम्बन्ध नहीं। मैं इस वृद्धावस्था में तुम्हारे सीने पर सौत ला बैठाऊँगा, इससे तुम्हें दुख नहीं होता ? बड़ी निष्ठुर हो तुम !

(चले जाते हैं ।)

—(अपने आप) क्या कहा नाथ, मुझे दुख नहीं होता, मैं निष्ठुर हूँ ! हाय नाथ ! कहीं तुम इस हृदय में पैठ सकते तो देखते, इसमें कितनी वेदना है, कितनी व्यथा है ! किन्तु (दीर्घ-निश्वास बोड़ती है ।) क्या करूँ ? राजपूतनी हूँ, जिस बात की शिक्षा स्वयं देती रही हूँ, उसके मार्ग का रोड़ा कैसे बन जाऊँ ?

(नेपथ्य की ओर देखती है ।)

रानी—चंड आ रहा है। आओ चंड ! अपनी माता को धीर बँधाओ, उसे बल दो, शक्ति दो कि वह इस विपत्ति से हँसते-हँसते जूझ सके ।

(युवराज चंड का प्रवेश, प्रणाम करता है ।)

रानी—चिरंजीव हो बेटा ! यह तुमने क्या कर दिया ?

युवराज—क्या माता ?

रानी—सारे राज्य में तुम्हारे इस व्रत के कारण हलचल मची हुई है। हर जगह इसी बात की चर्चा हो रही है। बेटा क्या मेरी चिरसंचित आशाओं पर यों पल भर में पानी फेर दोगे ?

क्या मेरे सीने पर सौत को बैठे देख कर, मेरा अपमान, मेरी अवहेलना होते देख कर तुम्हें प्रसन्नता होगी ?

युवराज—माँ !

रानी—बेटा !

युवराज—यदि तुम ऐसी बातें करोगी तो मैं अपने व्रत पर हड़ न रह सकूँगा। मुझे विश्वास है कि जिस माँ ने मुझे पितृ-भक्ति का पाठ पढ़ाया है, वह पति-भक्ति को अच्छी तरह जानती है। माँ ! व्रत चाहे मैंने ही, लिया है, किन्तु उसमें शक्ति तो तुम्हारी ही काम करती है।

रानी—किन्तु मेरा दुख बेटा.....

युवराज—मैं जानता हूँ तुम्हें दारुण दुख सहना पड़ेगा, पर माँ! राजपूत-रमणियाँ तो दुखों में पल कर बड़ी होती हैं, अपनी और अपने वंश की मर्यादा रखने के लिए वे जान की कोई परवाह नहीं करती। तो क्या तुम अपने पुत्र को कर्त्तव्य-पथ से हटता देख सकोगी ? क्या तुम्हें यह देख कर प्रसन्नता होगी ? माँ मुझे साहस दो, बल दो, शक्ति दो कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर पूरा चतर्हूँ। कठिन से कठिन परिस्थिति मुझे अपने शिखर से न डिगा सके, बड़े से बड़ा प्रलोभन मुझे अपने पथ से न विचलित कर सके !

रानी—जाओ बेटा ! तुम्हारा कर्त्तव्य जो सिखाता है, तुम्हारी आत्मा जिस बात की साक्षी देती है, वही करो और प्रार्थना करो कि मुझमें सब कुछ सहने की शक्ति आ जाय। भगवान

करे तुम अपने व्रत पर दृढ़ रहो और जब-जब भविष्य में वित्तौड़-वासी इन पहाड़ों, इन चट्टानों को देखें, उनके हृदय-पट पर तुम्हारा चित्र खिंच जाय । उन्हें अपने उस युवराज की याद आ जाय जो अपने कर्तव्य पर इन्हीं की भाँति स्थिर, अविचल अटल खड़ा रहा था ।

(आशीर्वाद देता है ।)

(पट-परिवर्तन)

मंडोवर का राज-भवन

छोटी रानी अपने कमरे में आगम कर रही हैं, दो दासियाँ
मिताग बजा रही हैं। राव चूड़ावत चिन्तामग्न प्रवेश
करते हैं। हाथ में एक पत्र है। सब उठ खड़ी होती हैं,
अभिवादन करती हैं। दासियाँ चली जाती हैं।

रानी--स्वच्छाकाश पर ये बादल कैसे छा रहे हैं महाराज ?
यह उतरा उतरा चेहरा, यह फटी-फटी आँखें, किस अनिष्ट की
सूचना देती है ?

राव--रणमल की ओर से यह चिट्ठी आयी है, पढ़ कर मे
उद्विग्न हो उठा हूँ। क्या सोचा था रानी ! (दीर्घ निश्वास छोड़ते
हैं।) मैं बहुत बेचैन हूँ, तुम नहीं समझ सकती !

रानी--कहो नाथ ! कहो, मैं तैयार हूँ, तुम कहो ! मैं दुख
का भार बटा लूँगी। कहो मेरे राव, बड़ी रानी से झगड़ा तो नहीं
हो गया, रणमल ने कुछ कटु बातें तो नहीं लिखीं, बड़ी रानी की
ईर्ष्या फिर तो नहीं धक्का उठी, मन को कुछ क्लेश तो नहीं
पहुँचा ? कहो ! क्या लिखा है इस पत्र में ? (उदास भाव से,
वास्तव में मैंने तुम दोनों के मध्य आकर घुसा किया। और फिर
आ ही गयी थी तो मुझे अपने हृदय को बस में रखना चाहिए
था। पर मैं क्या करती, तुम ही कहो मैं क्या करती ?

राव--नहीं प्रिये ! मैं तो तुम्हारा आभारी हूँ। तुम ने मेरे

जीवन की बुझती हुई बत्ती को अपने स्नेह से फिर जिला दिया, इस शुष्क वृक्ष को अपने स्नेह-रूपी जल से फिर हरा कर दिया। बड़ी रानी तो क्या, मैं समस्त संसार को तुम्हारे लिए तिलांजलि दे सकता हूँ। बात रानी के सम्बन्ध में नहीं, हंसा के सम्बन्ध में है।

रानी—हंसा के सम्बन्ध में ?

राव—देखो चित्तौड़ से रणमल ने यह पत्र भेजा है।

(पढ़ते हैं :)

पूज्य पिता जी,

यद्यपि मैं निर्वासित हूँ, आपके स्नेह का पात्र नहीं हूँ, फिर भी आपका पुत्र हूँ, हंसा का भाई हूँ। इसीलिए कुछ पंक्तियाँ लिख कर आप को इस बात की सूचना दे रहा हूँ।

आप ने जो नारियल युवराज चंड के लिए भेजा था, उस के सम्बन्ध में यहाँ एक विचित्र परिस्थिति उठ खड़ी हुई है। जब नारियल दरबार में आया तो कहीं राणा लक्ष्मि सिंह के मुँह से यह निकल गया—यह नारियल तो युवराज के लिए होगा, हम बूढ़ों के लिए कौन नारियल लाता है—बस, इस पर युवराज ने नारियल लेने से इनकार कर दिया और भरे दरबार में हंसा के लिए 'माँ' शब्द का प्रयोग कर दिया। क्रोध में आकर राणा ने स्वयं नारियल स्वीकार करने की प्रतिज्ञा कर ली। वे छद्म हैं। मैं नहीं चाहता, मेरी बहन एक वृद्ध के गले मढ़ दी

जाय । परन्तु यदि ऐसा हो भी तो ऐसी शर्त अवश्य लगा दी जाय जिससे हंसाबाई का पुत्र ही राज्य का अधिकारी बने । वृद्ध तो घाट किनारे का वृत्त होता है, कौन जाने कब गिर जाय । मेरा विचार है, आप मेरी बात समझ गये होंगे ।

आप का निर्वासित पुत्र

रणमल

रानी—इससे बढ़कर अच्छी बात और क्या हो सकती है ?

राव—क्या कहा रानी, अच्छी बात ! इससे बढ़ कर दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है.....

रानी—कि हंसाबाई मेवाड़ की रानी बने, शक्तिशाली सम्पन्न मेवाड़ की रानी बने, यह दुर्भाग्य है, महाराज ? आप क्या कहते हैं ?

राव—मैं ठीक कहता हूँ । हंसा मेवाड़ की रानी तो होगी, पर वृद्ध के साथ उसके दाम्पत्य-जीवन की कल्पना भी करती हो ? नीरस और शुष्क ! मैं जान-बूझकर अपनी प्रिय पुत्री को दुख के अथाह सागर में कैसे धकेल दूँ ? रणमल भी तो.....

रानी—दाम्पत्य जीवन महाराज ? क्या हमारा दाम्पत्य-जीवन दुःखमय रहा है ? फिर मेरे विवाह के समय आप की आयु कितनी थी ? क्षत्राणियाँ पति की सेवा करना खूब जानती हैं । वे चाहें तो नरक ऐसे दाम्पत्य-जीवन को स्वर्ग बना दें । तो क्या मेरी

लड़की क्षत्राणी नहीं, उसने क्षत्राणी का दूध नहीं पिया ? रही रणमल की बात, वह तो ईर्ष्या से जल उठा होगा। उसकी सौतेली बहिन मेवाड़ की सम्राज्ञी हो और वह उसका तुच्छ सेवक ! महाराव, मेरी लड़की जिससे मेवाड़ की सम्राज्ञा बने, ऐसा ही कीजिए।

राव—यदि उसके पुत्र को सिंहासन का अधिकार न हुआ तो हंसाबाई जैसे सम्राज्ञी हुई, न हुई।

(दासो का प्रवेश)

दासी—राज मंत्री ने यह चिट्ठी भेजी है और कहा है कि दूत इसे अभी चित्तौड़ में लाया है।

(राव चूड़ागत चिट्ठा लेकर पढ़ते हैं ।)

राव—लो युवराज की चिट्ठी भी आ गयी।

रानी—क्या लिखा है ?

राव—अपने पिता के लिए हंसाबाई के हाथ की याचना की है।

रानी—महाराव आप शर्न लगा दें कि यदि युवराज अपने सिंहासन का अधिकार छोड़ने को तैयार हों तो यह विवाह हो सकता है।

राव—वह तो लिखा जा सकता है, किन्तु आश्वासन क्या है रानी ? क्या भरोसा, विवाह के पश्चात् वह फिर अपना अधिकार जमा ले।

रानी—महाराव युवराज चंड मारे राजपूताने ने में अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा के लिए प्रसन्न हैं। आप उनसे कहें कि भगवान एकलिंग के सामने शपथ लेकर वे प्रण करें कि राज्य का अधिकार हंसाबाई के पुत्र के लिए सुरक्षित रहेगा।

राव—मैं लिख दूँगा, किन्तु रानी भली-भाँति सोच लो।

रानी—मैं सोच लिया महाराव ! मैं अधिकार की पुत्रारिनी हूँ। मेरी हंसा समस्त मेवाड़ की रानी होगी। इस बात की कल्पना ही से मुझ पर प्रसन्नता का उन्माद छाया जाना है। महाराव ! मैं युवराज से भी इसीलिए नाराज करना चाहती थी। अब यदि वह तैयार नहीं तो महाराजा लक्ष्मिह ही सही। मैं हंसा को किसी साधारण जागीरदार की पत्नी बनते नहीं देखना चाहती। मैं उन समस्त मेवाड़ पर शासन करने देखना चाहती हूँ। आप शर्त लिख भेजिए।

राव—(चलते हुए) कौन कहता है मैं राज्य करना हूँ राज्य तो तुम करती हो। मैं तो तुम्हारे हाथों में खिलौना मात्र हूँ।

प्रस्थान

रानी—मेरी लड़की मेवाड़ की रानी होगी और तुम्हारा लड़का, बड़ी रानी, उनका दास !

(प्रसन्नता के मारे गदलों में धंस जाती है ।)

(पट-परिवर्तन)

मंडोवर का उपवन
हंसाबाई अपनी सखियों के साथ
सब खेलती और गाती हैं ।

आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी
ऊषा कुंकुम रोली लाया
नभ-पथ में फैलाती आया
कण-कण में मस्ती है छापी
फूली है मन की फुलवारी
आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी
कुञ्ज-कुञ्ज में कोयल बोली
मन में मानो मिसरी बोली
तुम क्यों चुप बैठो हो भोली
तुम पर तो मुन्दरता वारी
आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी

(एक वृक्ष के नीचे बैठती हैं ।)

एक सखी—राजकुमारी, आज तो तुम अत्यन्त प्रसन्न दिखायी देती हो । तुम्हारा मुख खिला-खिला पड़ता है और अंग-अंग से जैसे उल्लास फूट रहा है ।

हंसाबाई—सच ही आज मैं प्रसन्न हूँ और मेरे

साथ यह उद्यान, यह फूल, यह तितलियाँ सब प्रसन्न है। बालारुण अपनी स्वर्ण-स्मित से इस विश्व के कण-कण में मुष्कानों का संचार कर रहा है। सखियो ! एक बार फिर कोई उल्लास का गीत गाओ।

सखियाँ—हम थक गयी हैं, आओ अब चलें, आराम करे।

हंसाबाई—इतनी जल्दी थक गयीं तुम, तुम सब, तुम्हें क्या हो गया है, तुम्हारी सब स्फूर्ति कहाँ गयी ?

एक सखी—हमारी स्फूर्ति तो कहीं नहीं गयी, हाँ, हम में नयी स्फूर्ति नहीं आयी।

हंसाबाई—मुझ में कहाँ से नयी स्फूर्ति आ गयी ?

दूसरी सखी—तुम स्फूर्ति न आयगी तो और किसमें आयगी.....

तीसरी सखी—तुम मेवाड़ की भावी सम्राज्ञी होगी और राजपूताने के वीर-शिरोमणी युवराज चंड की पत्नी, तुम क्यों न प्रसन्नता से नव स्फूर्ति पाओगी।

हंसाबाई—सच ही आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, सारे राजपूताने में जिस महान आत्मा की पूजा होती है, उसी के चरणों की दासी बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा। तुम कुछ गाओ सखियो, कुछ गाओ।

सखियाँ—आओ अब घर चलें !

हंसावाई—(तनिक उदास होकर) सखियो, कुछ गाओ, फिर मैं तुम्हें परेशान करने न आऊँगी, फिर तुम आगम ही करोगी, तुम्हें सताने वाली हंसा तुम्हारे पास न रहेगी ।

पहली सखी—राजकुमारी तुम हमें भूल जाओगी ।

दूसरी सखी—तुम्हें हमारी याद भी न आयगी ।

तीसरी सखी—और हम तुम्हें, तुम्हारे सुन्दर चाँद से मुखड़े को, तुम्हारी मुस्कान को, तुम्हारी मीठी बातों को स्मरण करके रोया करेंगी ।

हंसावाई—मैं तुम्हे भूल जाऊँगी ! (निश्वास छोड़ कर) ये सुख के दिन—स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, बन्धनरहित, दायित्व की कैद से आजाद दिन—भुलाये जा सकते हैं कहीं ? यह नीलाकाश, यह वाटिका और सब खेल जो इस विशाल आकाश के नीचे इस सुन्दर वाटिका में हमने खेले हैं, भुलाये जा सकते हैं कहीं ? इनकी याद सदा मेरे हृदय में टीस जगाया करेगी ।

सखियाँ—तुम उदास हो गयी राजकुमारी, यह विछोह, यह वियोग ! हम हँसती हैं, किन्तु हमारे दिल से पूछो ! लो आओ कुछ और दूर खेलें ।

हंसावाई—नहीं तुम खेलो, तुम गाओ, मैं वहाँ वृक्ष के नीचे बैठी सुनती हूँ ।

सब गाती हैं ।

गाना

आओ जा, कोई गाना गाओ
 आओ जी कोई सुनो सुनाओ
 चार दिवस जा भर कर खेलो
 जीवन से जावन कुछ ले लो
 फिर तो है उड़ जाना जी
 कोई गाना गाओ
 आओ जी, कोई सुनो सुनाओ
 यः हैमना गाना फिर दुर्लभ
 रोना और रलाना दुर्लभ
 होगा और जमाना जी
 कोई गाना गाओ
 आओ जा, कोई सुनो सुनाओ
 इस घर में है राज हमारा
 इस घर में सुख-साज हमारा
 उस घर कौन ठिकाना जो
 कोई गाना गाओ
 आओ जी कोई सुनो सुनाओ

सब ठहाका मार कर हँसती हैं ।

एक—क्यों कैसा गाना गाया राजकुमारी ? है न समय का ?

फिर ठहाके लगते हैं ।

घबरायी हुई मालती प्रवेश करती है ।

सौंस फूल रहा है, सब आश्चर्य से

उसकी ओर ताकतो हैं ।

पहली सखी—मालती, क्या हैं, घबरायी हुई क्यों हो ?

मालती—(जैसे अपने आप) आशाओं पर पानी फिर गया,
कल्पनाओं की बेल हरी भी न हुई थी कि मुरझा गयी !

दीर्घ-निश्वास छोड़ती है ।

पहली सखी—(पास आकर, उसे कन्धे से झुकझोर कर) मालती,
मालती !

मालती—युवराज चंड से राजकुमारी का विवाह न होगा !

सब—युवराज चंड से न होगा ?

हंसाबाई अवाक्, मुख की आकृति फीकी ।

पहली सखी—तो और किससे होगा ?

मालती—लाखा राणा से ।

सब—लाखा राणा से, बूढ़े लाखा राणा से ?

सब स्तब्ध मालती की ओर देखती हैं । हंसाबाई बैठे-बैठे

शिथिल सी, अचेत सी होकर लेट जाती है ।

सब उसकी ओर भागती हैं ।

पहली सखी—(चोख कर) मालती केवड़ा लाओ, केवड़ा
लाओ !

तेज़ी से मालती का प्रस्थान

पट-परिवर्तन

पहाड़ी कन्दरा में शिव मन्दिर के बाहर

झोटिंग भट्ट और धनेश्वर राय ।

झोटिंग—क्या कहा ? युवराज ने शपथ ले ली, सिंहासन का अधिकार छोड़ने की शपथ ले ली !

धनेश्वर—हाँ, उन्होंने समस्त दरबारियों के सामने भगवान एकलिंग के मन्दिर में जाकर शपथ ले ली ।

झोटिंग—उन्हें किसी ने रोका नहीं ?

धनेश्वर—सब ने रोका, किन्तु अपने प्रण पर वे अटल खड़े रहे ।

झोटिंग—महाराणा ?

धनेश्वर—उन्हें युवराज के इस हट पर क्रोध है, वे विवाह करेगे । दूत मंडोवर जा चुका है !

झोटिंग—महारानी ?

धनेश्वर—वे व्यथित हैं ।

झोटिंग—नागरिक ?

धनेश्वर—त्रस्त हैं—अनिष्ट की आशङ्का से भयभीत हैं ।

झोटिंग—(जैसे अपने से) चिनगारी पड़ गयी, चिनगारी पड़ गयी, मेवाड़ की की शान्ति नष्ट होकर रहेगी ।

धनेश्वर—अच्छे लक्षण नहीं दिखायी देते !

झोटिंग—राजपूतों का पुराना दम्भ, मिथ्या गर्व, झूठी मर्यादा

धनेश्वर—पितृभक्ति !

ओटिंग—हाँ पितृभक्ति ! जिससे देश पर विपत्ति टूट पड़े ।

धनेश्वर—चाहे जो हो कीर्तिमान जी ! मैं तो युवराज की प्रतिज्ञा देखकर आश्चर्यचकित रहा गया ! कितना उल्लास था, कितना हर्ष था ! इतना त्याग और लेश-मात्र भी चिन्ता नहीं

ओटिंग—इसी को मूर्खता कहते हैं । (विद्रूप से हँसकर) विधि न टलेगी । मेवाड़ की शान्ति पर जो चिनगारी डोडियों के आगमन के रूप में पड़ी थी, वह इस शपथ से सुलग उठी है और महाराणा के विवाह पर ज्वाला बन जायगी । फिर कौन जाने इस ज्वाला में कौन-कौन भस्म हो ?

धनेश्वर—और कीर्तिमान जी ! आप.....

ओटिंग—मैं अपनी प्रार्थना जारी रखूँगा । राणा ने हमें जागीरें दी हैं, हमें सुख दिया है, आराम दिया है, उन पर विपत्ति आते देखकर हम कैसे पीछे हट जायँ ।

धनेश्वर—आप धन्य हैं !

ओटिंग—मेरी जागीर का ध्यान रखना, मेरे बाल बच्चों का ध्यान रखना । मैं उपाय करूँगा । भगवान एकलिंग राजकुल को सुमति दें, विधि का प्रहार टल जाय !

वापस कन्दरा में जाते हैं, धनेश्वर राय कुछ

क्षण खड़े रहते हैं, फिर धीरे-धीरे चलते हैं ।

पट-परिवर्तन

महलों में मार्ग के किनारे की वाटिका

युवराज चंड और राघव

चंड—क्यों भाई, तुम्हें मेरी प्रतिज्ञा उचित नहीं जान पड़ी ?

राघव—नहीं भाई, उचित क्यों नहीं जान पड़ी । संकुचित स्वार्थप्रियता के दृष्टि-कोण से, तुम्हारा यह व्रत, यह त्याग, चाहे मूर्खता और राजनीतिक अदूरदर्शिता का ही द्योतक समझा जाय और कदाचित् स्वार्थी, जीवन को ऐश्वर्य के तुला में तोलने वाले उस पर हँसे, पर यदि मर्यादा परुषोत्तम भगवान् राम का, केवल अपने कुल की मर्यादा पालने के निमित्त, राजपाट छोड़कर चौदह लम्बे वर्षों के लिए जंगलों की खाक छानना सराहनीय है, तो अपने प्रण की रक्षा के लिए तुम्हारा यह व्रत भी कम प्रशंसनीय नहीं और जिस तरह उनका नाम इतिहास में उज्ज्वल अक्षरों में लिखा गया, इसी तरह तुम्हारा भी लिखा जायगा । आने वाली नसलें तुम्हारा नाम लेते ही गर्व से फूल उठा करेगी ।

चंड—किन्तु, भाई तुम प्रसन्न दिखायी नहीं देते । जब मैं भगवान् एकलिंग के मन्दिर में शपथ ले रहा था तो मैंने देखा— तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है और तुम्हारे हृदय में न जाने कैसे

विचार उद्वेलित होकर तुम्हारे मुख पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं ।

राघव—हाँ भाई, मुझे खुशी नहीं हुई ।

चंड—क्यों ?

राघव—इसलिए कि मुझे पण्डित कीतिमान की भविष्य-वाणी स्मरण हो आयी । वे अनिष्ट की आशंका करते थे और वह हमारे सामने आ गया । आपके सिंहासन-त्याग और भविष्य में किसी बच्चे के हाथों उसके संचालन से क्या परिणाम निकल सकते हैं, उसे हम अभी से क्या जान सकेंगे ? पिताजी वृद्ध हो गये हैं । इस आयु में उनका विवाह हितकर होगा या नहीं, यह कौन कह सकता है ? निश्चित बातें आपके व्रत से अनिश्चिन् हो गयी हैं । मेवाड़ का भाग्य संशय के गर्त में जा पड़ा है ।

चंड—लेकिन पिता जी का वाक्य ? उससे उनकी.....

राघव—विवाह के प्रति अभिलाषा प्रकट होती थी, आप यही कहना चाहते हैं न ? और उनकी तनिक सी इच्छा के लिए आपने यह महान व्रत धारण कर लिया । किन्तु इसका मेवाड़ के भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ सकता है, उसकी जनता को किन विपत्तियों का सामना करना पड़ सकता है, इस बात को सोचकर मेरा हृदय उद्विग्न हो जाता है । पितामह भीष्म ने अपने पिता की इच्छा के लिए महान व्रत तो धारण किया, किन्तु उससे हस्तिनापुर की जनता पर कौन सी आपत्तियों के पहाड़ टूटे और कितने व्यक्तियों के

जीवन-उद्यान पतझड़ का शिंकार हो गये, यही सोच कर मैं बेचैन हो जाता हूँ ।

युवराज उद्भ्रान्त से एक स्थान पर बैठ जाते हैं ।

राघव—मुझे आप आज्ञा देंगे । मुझे नगर में कई स्थानों पर जाना है ।

प्रणाम करके प्रस्थान

युवराज उठकर घूमते हैं, फिर रुकते हैं ।

चंड—(आप अपने) कर्त्तव्य ! तेरा पथ कितना कठिन है !

निश्वास छोड़ते हैं और उद्विग्नता से घूमते हैं ।

फिर वहीं बैठ जाते हैं । रानी प्रवेश करती है ।

अपने आप में खार्या हुई तेज़ी से जा रही है ।

चंड—माँ !

रानी—ओह तुम यहाँ बैठे हो, मैंने तुम्हें नहीं देखा !

चंड—माँ यह तुम्हारी कैसी दशा है !

रानी—कुछ भी तो नहीं, बेटा !

चंड—यह उड़ा-उड़ा चेहरा, यह बिखरे-बिखरे बाल, यह फटी-फटी आँखें, माँ-माँ !

रानी—बेटा !

चंड—तुम्हें मेरे प्रतिज्ञा लेने से बहुत दुख हुआ ?

रानी—नहीं बेटा ! तुमने ठीक किया, तुमने मेरी शिक्षा को चरितार्थ किया । मैं—मेरी चिन्ता न करो, अपने कर्त्तव्य पर डटे

रहो, मुझे कोई दुख नहीं। जो प्रतिज्ञा की है, (कंठ भर आता है।) उसका जीवन भर पालन करो, उससे गिर गये तो मुझे सुख में भी दुख प्रतीत होगा और उस पर डटे रहे तो मैं दुख को भी सुख करके मानूँगी।

तेज़। अपने रास्ते चली जाती है।

युवराज फिर उठ कर धूमते हैं।

चंड—(अपने आप) सब दुखी हैं, सब दुखी हैं। शोक-सागर में डूबे हुए हैं।

हेमवती अपने ध्यान में मग्न आ रही है।

दोनों टकरा जाते हैं। युवराज उसे

कंधों से थाम लेते हैं।

चंड—हेम ? तुम भी दुखी हो, तुम्हें भी मेरी इस प्रतिज्ञा पर दुख है, तुम भी मुझे बुरा समझती हो ?

हेमवती—बुरा ! भाई, कैसी बातें करते हो, मुझे अपने इस सत्यव्रती भाई पर गर्व है। मैं तो प्रार्थना करती हूँ कि हर राजपूतनी को तुम जैसा वीर भाई मिले !

चंड—तुम्हें दुख नहीं हुआ बहिन ?

हेमवती—दुख, दुख तो भाई मन की बात है। हम उसी को दुख मानते हैं, जिसमें हमें दुख महसूस होता है, चाहे लोग हमें कितनी भी सुखी समझें। अभी अपने आगमन के बाद इन दिनों मैंने तुम्हें सच्चे राजपूत के जिस रूप में देखा है, उसकी मैंने कल्पना भी न की थी। मैंने तुम्हें जैसा समझा था, उससे कहीं अधिक कर्त्तव्य-परायण और दृढ़-प्रतिज्ञ पाया।

चंड—किन्तु माँ ?

हेमवती—माँ—उनकी न पूछो। वे अपने दुख को दबाती अवश्य हैं, परन्तु उनका दुख, उनके अन्तर की वेदना, जैसे उनके प्रत्येक अंग से फूटी पड़ती है। सारी रात उन्होंने घूम-घूम कर बिता दी। तुम नहीं समझते। जिसका पुत्र राज्य का अधिकारी होता हुआ भी उसे त्यागने का प्रण कर ले, जिसको अपना पति हाथों से निकलता हुआ प्रतीत हो, जिसको अपने सारे अधिकार छिनते हुए दिखायी दें और फिर जिसकी आयु बुढ़ापे के पथ पर शीघ्रता से अग्रसर हो, उसके दुख का हम-तुम अनुमान नहीं कर सकते, परन्तु वे क्षत्राणी हैं, कर्त्तव्य के पथ पर अपने दुखों को भेलना भली-भाँति जानती हैं।

चलने का उद्यत होती है।

चंड—बहिन, मैं कृन्तु हुआ। मैं तुम्हें किस तरह धन्यवाद दूँ ? तुम आदर्श बहिन हो। यदि तुम जैसी बहिनें सबके हों, तो कोई कायर न हो, कर्त्तव्य-पथ से हट जाने वाला न हो। मैं धन्य हूँ कि मुझे तुम जैसी बहिन मिली है। मैं व्यथित था, दुखी था, मैं समझता था मेरे कर्त्तव्य-पालन ने सब को संकट में डाल दिया है। अब कोई गम नहीं। दुख आते हैं आये ! कष्ट आते हैं आये ! तुम देखोगी, मैं पत्थर बन जाऊँगा, चट्टान बन जाऊँगा, तुम्हारे जैसी बहिन पाकर भाई कर्त्तव्य के पथ से हट जाय, कैसे हो सकता है ?

हेमवती—वीर भाई, यही ठीक है। तुम्हारी बहिन तुमसे यही आशा रखती है। क्या राजपूतनियाँ अपने भाई-बेटों को सहर्ष

युद्ध में नहीं भेज देती ? क्या उससे उन्हें दुख नहीं होता ? होता तो है, पर कर्त्तव्य उन्हें बढ़ावा देता है । तो क्या केवल दुख के भय से, कर्त्तव्य के इस युद्ध में फाँदने से मैं तुम्हें रोक्कूंगी ? चलो भाई ! सारा जीवन ही एक युद्ध है । इसमें माँ, बाप, भाई, बहिन किसी का ध्यान न करो । कर्त्तव्य ही तुम्हारा साथी हो, प्रतिज्ञा ही तुम्हारी संगिनी हो !

पटाक्षेप

तृतीय अंक

१

दो ब्राह्मण विवाहोत्सव में पायी हुई गठरियाँ
सम्हाले, बातें करते हुए प्रवेश करते हैं

एक—आखिर महाराणा का विवाह हो गया ।

दूसरा—हाँ, ऐसा उल्लास-हीन विवाह भी कभी न देखा होगा । ऐसा लगता था, जैसे सब पकड़ कर विवाह में शामिल किये जा रहे हों, जैसे उनकी इच्छा के विरुद्ध, खुशी में नहीं, गम में उन्हें शामिल किया जा रहा हो ।

पहला—सब हँसते थे, किन्तु किसी के चेहरे पर भी आन्तरिक प्रसन्नता का चिह्न न था—खोखले कढ़कड़े, वास्तविक प्रसन्नता से रहित !

दूसरा—और खुशियाँ, बाज, नाच, गाने ? जैसे वृद्ध की अर्थी के साथ ! यह विवाह था ! विवाह की नकल में भी इससे अधिक खुशी, इससे अधिक उल्लास होता ।

पहला—सब के चेहरों पर व्यथा की एक गहरी छाप थी, किन्तु हँस रहे थे, जैसे दुख की सीमा पर पहुँच कर मनुष्य हँस देता है, हृदय के दुख को छिपा कर ।

दूसरा—कोई भी प्रसन्न नहीं, एक व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं, वर-बधू भी नहीं ।

पहला—हाँ, वर-वधू भी नहीं ।

दूसरा—(नेपथ्य की ओर देखकर) यह दीपमाला हो रही है ।
नगर पर छाये हुए दुख के गहरे अन्धकार को कृत्रिम प्रकाश से
दूर किया जा रहा है ।

पहला—मालूम होता है, विधि से मेवाड़ की सम्पन्नता
और खुशी देखी नहीं गयी और विवाह के रूप में उसने यह
विपत्ति भेज दी ।

दूसरा—यह विवाह—युवराज ने इसी के लिए अपना
अधिकार छोड़ दिया, राणा वृद्धावस्था में, युद्ध पर जाने के बदले
नयी वधू ले आये और महारानी अधिकार-हीन हो गयीं ।

पहला —चलो जी, दान तो खूब मिला ।

दूसरा—हाँ, दान तो खूब मिला ।

बाजों की आवाज़ आती है ।

पहला—लो यह बाजे बजने लगे ।

दूसरा—जैसे नगर पर छाया हुआ अवसाद मुखरित
हो उठे ।

पहला—जैसे अँधेरे की भयावहता दूर करने के लिए कोई
गाने लगे ।

बातें करते चले जाते हैं ।

पट-परिवर्तन

चित्तौड़ का नया राज-भवन

हंसाबाई और मालती

हंसाबाई—(जैसे अपने आप) यह और वह, दोनों दशाओं में कितना अंतर है ! एक की कल्पना में सुख है, सुख में पुलक है, पुलक में शान्ति है । दूसरी के ध्यान में ही दुख है, दुख में पीड़ा है, पीड़ा में अशान्ति है । यदि युवराज नारियल स्वीकार कर लेते, यदि.....

आकुलता से धूमती है ।

मालती—महारानी ! जो हो चुका, हो चुका, अब उसकी चिन्ता करने से लाभ ?

हंसाबाई—(निराशा से) हाँ ! कुछ लाभ नहीं । मैं स्वयं सोचती हूँ मालती, मुझे क्या हो गया है ? मस्तिष्क में क्यों हलचल मची हुई है, रोम-रोम में क्यों आग धधका करती है ? चंड ! उँह, उनके साथ जीवन की कल्पना ही क्यों, यह तो पाप है । जो बीत गया, बीत गया, अब अतीत की स्मृति से लाभ ? जो हाथ नहीं आ सकता उसकी इच्छा ही क्यों ? जीवन की पुस्तक के पिछले पृष्ठ फाड़ डालूँगी । अब तो नये अध्याय का आरम्भ होगा ।

मालती—सतिषों के लिए यही उचित है महारानी ! सच्ची चूत्राणी के लिए पति की सेवा ही सबस्व है। आज इतने दिनों से आप किसी से बोली नहीं। आपने किसी से बात तक नहीं की। कुमार आ-आकर मुड़ गये, स्वयं रणमल आये और चले गये।

हंसाबाई—(जैसे अपने आप) तैयार करना होगा, अपने आप को कर्त्तव्य के पथ पर चलने के लिए तैयार करना होगा। हृदय दुखी हो, पर मुख प्रसन्न दिखायी दे, रोने की इच्छा हो, पर अधर हँस पड़ें, रिक्त हृदय अनुराग सीख जाय।

दासी का प्रवेश

दासी—महाराणा आ रहे हैं।

प्रस्थान

मालती—ठहरो मैं भी आती हूँ।

प्रस्थान

हंसाबाई—(अपने आप) आओ नाथ ! तुम आज देखोगे कि मैं कितनी बदल गयी हूँ। आज अचानक मैं चंचल और उच्छ्वल हंसा से सौम्य और गम्भीर सम्राज्ञी हो गयी हूँ।

महाराणा लक्ष्मिह का प्रवेश

हंसाबाई उनका अभिवादन करती है।

राणा आकर उसके पास बैठ जाते हैं।

लक्ष्मिह—कहो आज जी कैसा है ? वैद्य कहते हैं कि यहाँ की जलवायु तुम्हारे अनुकूल नहीं हुई। कहो तो हम चित्तौड़

से बाहर किसी अच्छे स्थान पर चले जायँ ।

हंसाबाई—आप के चरणों में नाथ ! मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं । दिल कुछ उदास अवश्य था, परन्तु अब तो धीरे-धीरे मैं यहाँ की अभ्यस्त हो रही हूँ ।

लक्ष्मिह—(प्रसन्नता से) युवराज तुम्हें प्रणाम करना चाहता था ।

हंसाबाई—मैं आज उनसे मिलूँगी ।

लक्ष्मिह—कुमार राघव अपनी नया माँ को देखने के लिए उत्सुक था ।

हंसाबाई—आप उन्हें बुला भेजिए ।

लक्ष्मिह—मैं बहुत प्रसन्न हुआ (हंसाबाई के कन्धे पर हाथ रखते हैं, स्वर तनिक करुण हो जाता है ।) वामनव में हंसा ! मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है, मैं तुम्हें अपने साथ नरक में घसीट लाया हूँ । तुम यहाँ आकर सुखी न हो सकी ।

हंसाबाई—नहीं नाथ ! मैं तो आपकी अपार कृपा और प्रेम से बहुत सुखी हूँ ।

लक्ष्मिह—(व्यंग्य से हँसकर) वृद्ध का प्रेम और कृपा—पतझड़, शिशिर, गाम्भीर्य ! खैर मैं प्रयास करूँगा प्रिये, यदि मुझ से तुम्हें सुख न मिले तो दुख भी न हो । तुम्हारी कोई भी अभिलाषा पूरी होने से न रहेगी । मैं अभाव को श्रद्धा और भक्ति से पूरा कर दूँगा ।

हंसाबाई—आप कैसी बातें करते हैं महाराज ! चरणों की धूल को आप सिर पर स्थान दे रहे हैं । वह तो वहीं प्रसन्न है ।

लक्ष्मि—हंसा !

हंसाबाई—महाराज !

लक्ष्मि—(गद्गद् होकर) तुम सुखी हो !

हंसाबाई—बिलकुल ।

(मुस्कराती है ।)

लक्ष्मि—तो मुझसे अधिक कौन प्रसन्न है ? मेरी सबसे बड़ी चिन्ता दूर हो गयी । मैं राज्य के कामों में अब अधिक ध्यान दे सकूँगा । आज तक मैं अपने आप में न था, पश्चात्ताप का बोझ मेरा गला दबा रहा था, आज तुमने मुझे जिला दिया ।

हंसाबाई—(चुप रहती है ।)

लक्ष्मि—कहो, तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?

हंसाबाई—दासी हर प्रकार से सुखी है ।

लक्ष्मि—तुम इस महल में उदास रहती होगी, मैं सोचता हूँ—बड़ी रानी से कहकर भारमली को तुम्हारे पास भिजवा दूँ ।

हंसाबाई—भारमली कौन ?

लक्ष्मि—मेवाड़ की प्रसिद्ध गायिका ।

हंसाबाई—मैं इस कृपा के लिए अनुगृहीत हूँ ।

राणा उठते हैं ।

लक्ष्मि—मैं अभी जाकर उसे भेजता हूँ और युवराज से भी कहता हूँ कि वह अपनी माँ की सेवा में उपस्थित होकर आशीर्वाद ले ।

प्रस्थान

हंसाबाई—माँ, (व्यंग्य से हँसती है ।) विधि की कैसे विडम्बना है ! अब युवराज मुझे माँ कहेंगे, पर नहीं मैं कुछ न सोचूँगी, मैं अपने आप को व्यस्त रखूँगी, मैं भूलने का प्रयास करूँगी ।

मालती प्रवेश करती है ।

हंसाबाई—देखो मालती, मैं आज बदल गयी हूँ, अब तम यहाँ किसी दुखित, व्यथित, अपने भाग्य को कोसने वाली हंसा को न देखोगी, तुम्हें अब बदली हुई हंसा दिखायी देगी ।

मालती—यह आप का कर्त्तव्य है । इसी मार्ग में सुख और शान्ति है । जीवन तो समझौते का दूसरा नाम है महारानी ! इसमें पग-पग पर परिस्थितियों से समझौता करना पड़ता है और यदि अपने आप को उनके अनुकूल न बनाया जाय तो दुःख, अवसाद के सिवा कुछ हाथ नहीं आता ।

दासी प्रवेश करती है ।

दासी—युवराज आ रहे हैं !

फिर वापस चली जाती है ।

मालती भी जाना चाहती है ।

हंसाबाई—मालती, तुम मेरे पास रहो, तुम मेरे पास रहो,

मेरा दिल धड़क रहा है, मेरा गला सूख रहा है ।

युवराज विनम्र-भाव से प्रवेश करते हैं ।

युवराज—प्रणाम करता हूँ माता !

दोनों हाथ जोड़ते हैं ।

हंसाबाई नहीं बोलती, आँखें नीची किये काँपती है ।

युवराज—माता अशीर्वाद दो । तुम्हारा पुत्र तुम्हारे सामने खड़ा है, अशीर्वाद दो कि वह तुम्हारी सेवा में तत्पर रह सके, अपने कर्त्तव्य से विचलित न हो ।

हंसाबाई काँपते-काँपते बैठ जाती है ।

युवराज—माँ, पुत्र से डर कैसा ? वह तो तुम्हारा दास है, तुम्हारा तुच्छ सेवक है ।

हंसाबाई का काँपना बन्द हो जाता है ।

वह एक क्षण आँख उठाकर देखती है

फिर आँखें नीची कर लेती है ।

हंसाबाई—युवराज !

आगे नहीं बाँल सकती, केवल काँपती है ।

युवराज—युवराज नहीं माँ ! पुत्र कहो, मैं तो केवल अपनी माँ के चरणों में प्रमाण करने आया हूँ और कहने आया हूँ कि आप इस तुच्छ को सदैव अपना सेवक समझें ।

प्रमाण करके चले जाते हैं ।

हंसाबाई का रंग पीला पड़ जाता है,

और वह वहीं लेट जाती है ।

मालती—(चीखकर) कोई है, कोई है ।

दासियों भागो आता हैं ।

मालती—महारानी की तबीयत ठीक नहीं, तुम पंखा करो
मैं केवड़ा आदि लाऊँ ।

पट-परिवर्तन

रानी हंसाबाई के महल के पीछे उद्यान
वाटिका की ओर बढ़ा हुआ चबूतरा दिखायी देता है ।
बड़ी रानी सुकेशी की आँगुली पकड़े प्रवेश करती है ।

सुकेशी—इधर आँधेरा है, मुझे डर लगता है, मैं न जाऊँगी ।

रानी—नहीं, नहीं, वहाँ चल के बैठेंगे, तू सुकेशी है न, मेरी बच्ची है न, बड़ी अच्छी है न, देख यहाँ कोई आँधेरा नहीं, आकाश में चाँद कैसा चमक रहा है और तारे नन्हें-नन्हें दियो की भाँति आँधेरे को दूर करने में उसकी सहायता कर रहे हैं । चल तुझे इनकी बातें सुनाऊँ ।

सुकेशी—मुझे नींद आ रही है, मैं सोऊँगी ।

रानी—अभी से सो जाओगी, आज तक कभी इतनी जल्दी नहीं सोयी । छोटी माँ के पास इस समय तुम खेला करती हो ।

सुकेशी—मुझे छोड़ दो, मैं छोटी माँ के पास जाऊँगी, मैं वहीं खेलूँगी ।

रानी—हाँ हाँ, खेलना, मैं तुम्हें बड़ी सुन्दर और विचित्र कहानी सुनाऊँगी ।

सुकेशी—कहानी ?

रानी—हाँ, हाँ, बड़ी सुन्दर कहानी है !

सुकेशी—धाय मुझे बड़ी अच्छी कहानियाँ सुनाती है ।

रानी—धाय से भी अच्छी कहानी सुनाऊँगी ।

सुकेशी—परियों की कहानी ?

रानी—और देवों की कहानी !

वृक्ष की छाया में जाती है ।

हंसाबाई के कमरे में प्रकाश होता है ।

रानी—देख. यहाँ बैठ, मेरे पास मेरी गोद में और मैं यहाँ गिरे हुए वृक्षों के तने पर बैठती हूँ, (जैसे अपने आप) कितनी बार मैं यहाँ अंधेरे में आकर बैठी हूँ ! कितनी रातों में ये यहाँ जाग कर काट दी है !!

सुकेशी—माँ, छोटी माँ.....

रानी—हाँ, छोटी माँ, वह कमरे में आ गयी है, वह तुम्हें प्यार करती हैं ?

सुकेशी—करती हैं ।

रानी—और राणा जी ?

सुकेशी—करते हैं, नहीं अब नहीं करते, कभी-कभी करते हैं ।

रानी—सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ !

रानी—जब वे इकट्ठे होते हैं तो क्या बातें करते हैं ?

सुकेशी—कहते हैं इसका विवाह बड़ी धूम-धाम से होगा ।

माँ, मेरा विवाह कब होगा ?

रानी—जब तू बड़ी हो जायगी ।

सुकेशी—राजकुमार से होगा न माँ ?

रानी—हाँ राजकुमार से ।

सुकेशी—माँ ! मैं तो तुम से विवाह करूँगी ।

रानी—दुर पगली, कभी स्त्रियाँ भी स्त्रियों से विवाह करती हैं ?.....सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ ।

रानी—कभी वे मेरे सम्बन्ध में भी बातें करते हैं ?

सुकेशी—नहीं, वे मेरे सम्बन्ध में ही बातें करते हैं ।

रानी—(शून्य में देखती हुई) मैं उतर गयी हूँ, उनकी याद से उतर गयी हूँ, अपने शिखर से उतर गयी हूँ ।

सुकेशी—माँ, सर्दी लग रही है ।

रानी—यह तो वसन्त की हवा है, तुम्हें अच्छी नहीं लगती ?

सुकेशी—नहीं माँ, मुझे ठंड लगती है । तुम्हें कैसी लगती है मा ? तुम्हें यह अच्छी लगती है ?

रानी—मुझे भी अच्छी नहीं लगती । वसन्त की हवा, पतझड़ की बयार—मेरे लिए अब इन दोनों में कोई अंतर नहीं सब कुछ एक सा बीत रहा है, एक रस और एक रंग !

सुकेशी—(चुप रहती है ।)

रानी—सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ !

रानी—वे कभी रूठते नहीं ?

सुकेशी—वे प्रसन्न रहते हैं, सदा प्रसन्न रहते हैं, कभी-कभी मुझे देख कर हँस पड़ते हैं ।

रानी—छोटी माँ तुम्हें जाने को नहीं कहती ?

सुकेशी—नहीं वे डरती हैं ।

रानी—डरती है ?

सुकेशी—जब मैं जाना चाहती हूँ, तो वे कहती हैं, न जाओ, न जाओ ।

रानी—और राणा जी, वे कुछ नहीं कहते ?

सुकेशी—वे चुप रहते हैं ।

रानी—तुम छोटी माँ को देखना चाहती हो ?

सुकेशी—हाँ, हाँ, मैं देखना चाहती हूँ ।

रानी—मैं तुम्हें अपने कन्धों पर उठा लूँगी ।

सुकेशी—न, मुझे डर लगता है, मैं गिर पड़ूँगी ।

रानी—नहीं, मैं तम्हें न गिरने दूँगी, मैं इस वृक्ष के तने पर खड़ी हो जाऊँगी और तम मेरे कन्धों पर चढ़ कर देखना ।

रानी वृक्ष के सहारे तने पर खड़ी होता है, सुकेशी

उसके कन्धे पर चढ़ती है, रानी काँपती है ।

सुकेशी—अहा-हा, माँ ! मैं देख रही हूँ, छोटी माँ को देख रही हूँ ।

रानी—अकेली हैं वे ?

सुकेशी—नहीं, पिता जी भी हैं ।

रानी—(काँपते स्वर में) क्या कर रहे हैं ।

सुकेशी—छोटी माँ को देख रहे हैं ।

रानी—(और काँपते स्वर में) और छोटी माँ ?

सुकेशी—वे दीवार की ओर देख रही हैं ।

रानी—(और भी काँपते स्वर में) दूर बैठे हैं ?

सुकेशी—नहीं समीप बैठे हैं ।

रानी—उतर आओ, उतर आओ, मैं थक गयी हूँ, मैं काँप रही हूँ ।

सुकेशी—नहीं माँ, देखो पिता जी...ओह माँ, तुम काँप रही हो ? मुझे उतार दो, मुझे उतार दो !

रानी सुकेशी को उतार देती है ।

रानी—तुम्हारे पिता जो क्या कर रहे थे ।

सुकेशी माँ का मस्तक चूमती है ।

रानी दीर्घ-निश्वास छोड़ती है ।

सुकेशी—माँ ! अब वे हम रे महल में क्यों नहीं आते ?

रानी—(हँसकर) अब उन्हें छोटी माँ ने बन्दी बना लिया है । (दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई) वह देखो, हेमलता तुम्हें ढूँढ़ती आ रही है । चलो चलें ।

सुकेशी की अँगुली पकड़े धीरे-धीरे चली जाती है ।

पट-परिवर्तन

हंसाबाई का भवन
रानी और युवराज चंड

हंसाबाई—मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है युवराज, मालूम है ?

चंड—नहीं माता !

हंसाबाई—उस दिन मैं तुमसे कोई बात न कर सकी । कब से मेरे हृदय मे तुम्हें देखने की, तुमसे बात करने की लालसा थी ! और तुम आये तो देख तक न सकी, बात तक न कर सकी । आज मैंने तुम्हें इसीलिए बुलाया है ।

चंड—मैं उपस्थित हूँ माँ !

हंसाबाई—युवराज !

चंड—कहो माँ !

हंसाबाई—मुझे माँ न कहो युवराज !

चंड—और क्या कहूँ ?

हंसाबाई—मेरा नाम लेकर पुकारो ।

चंड—यह कैसे हो सकता है ?

हंसाबाई—पुकारने से ! तुम धरती में निगाहें गाड़े क्यों खड़े हो, ऊपर निगाह क्यों नहीं उठाते, (मुस्कराती है) क्या हैं ऐसी ही डर की वस्तु हूँ ?

चंड—सेवक की आँखें माँ के चरणों में ही अच्छी हैं ।

हंसाबाई—युवराज !

चंड की छोड़ी पकड़ती है । आँखों में लालसा है ।

चंड—माँ !

आँखें लाल और भृकुटी तनी हुई है ।

रानी एक कदम पीछे हट जाती है ।

हंसाबाई—यह लाल-लाल आँखें, यह तना-तना चेहरा, तुम्हारा नहीं, मेरा होना चाहिए था युवराज ! तुम कहते होगे—हंसा पागल हो गयी है; वह चरित्र-हीन हो गयी है, पर युवराज क्यों, कभी सोचा ? तुम्हीं तो इसका कारण हो । जिसकी मूर्ति को मैंने इतने दिनों से हृदय-मन्दिर में बसा रखा था, उसी ने मेरी आशाओं की दुनिया बिगाड़ डाली और फिर ये लाल आँखें, यह तना हुआ चेहरा, यह उपेक्षा, यह घृणा ! इसीलिए न, कि मैं नारी हूँ और नारी तुम्हारे विचार में पुरुष की इच्छाओं की दासी मात्र है । उसका अपना व्यक्तित्व कुछ नहीं । जैसे पुरुष उसके भाग्य का विधान कर दे, वैसे ही उसे रहना चाहिए, वही उसे मानना चाहिए ।

चंड—माँ !

हंसाबाई—मुझे माँ न कहो युवराज !

चंड—माँ मैंने अपना कर्त्तव्य-पालन किया था ।

हंसाबाई—और इस कर्त्तव्य की वेदी पर तुम ने बलि किस की दी ?

चंड—मेरे पास जो था, मेरा जो अधिकार था, वह मैंने छोड़ दिया। और मेरे पास रहा हो क्या है? जान है, समय आने पर मैं उसका भी मोह न करूँगा।

हंसाबाई—हाँ! तुम ने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, किन्तु तुम्हें दूसरे के सर्वस्व को बलिदान करने का क्या अधिकार था?

चंड—माँ, तुम भूलती हो! कर्त्तव्य पथ पर चलने वाले की दृष्टि सदैव उसके आदर्श पर रहती है। वह जो कर्त्तव्य समझता है, वही करता है। पिता जी के वाक्य पर मैंने हृदय में तुम्हें माँ समझ लिया था, फिर जिसे माँ कह दिया, उसे माँ कह दिया। यदि तम किसी को पुत्र कह दो तो क्या फिर..... नहीं, मैं वह शब्द कभी जिह्वा पर नहीं ला सकता। उन परिस्थितियों में मेरा जो कर्त्तव्य था, वह मैंने पूरा किया माँ, इन परिस्थितियों में तुम्हारा जो कर्त्तव्य है, वह तुम पूरा करो।

हंसाबाई—माँ नहीं, युवराज मुझे माँ न कहो।

दोनों हाथ चंड के कन्धों पर रख देती है।

चंड—(हाथ झटक कर) बस अब वहीं खड़ी रहो! जो हाथ माँ के संकेत पर धरती को उलट सकते हैं, वह उसी माँ को, अपने पथ से विचलित होते देखकर, छुरी भी भोंक सकते हैं।

जाना चाहते हैं।

हंसाबाई—युवराज, युवराज ! तुम्हें गर्व है, तुम अपमान कर सकते हो, मेवाड़ की रानी का अपमान कर सकते हो ? जानते हो इसका परिणाम क्या हो सकता है ?

चंड—(सुनकर) मेवाड़ की रानी ! मैं कहता हूँ, मेरी माँ, यदि संसार भर की सम्राज्ञी होकर भी ऐसा दुर्व्यवहार करती, तो मैं पुत्र होता हुआ उसका गला घोट देता । भाग्य बलवान है । जहाँ वह हमें रखता है, जिन परिस्थितियों में रखता है; उनमें अपने कर्त्तव्य को सामने रख कर हमें चलना चाहिए । भाग्य ने आप को माँ और मुझे पुत्र बना दिया । तो क्या हम इस पवित्र नाते को तोड़ देंगे ? क्या तुम क्षत्राणी न रहोगी, क्या मैं क्षत्री न रहूँगा ? माँ ! मेवाड़ की रानी को यह शोभा नहीं देता ।

प्रस्थान

हंसाबाई—नहीं, मैं मेवाड़ की रानी नहीं, मैं सम्राज्ञी नहीं । मैं केवल नारी हूँ और नारी के साथ पुरुष का ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए ? क्या बिना सोचे-समझे पुरुष का उसे अपने दम्भ, अपनी झूठी मर्यादा की वेदी पर चढ़ा देना चाहिए ? कर्त्तव्य, कर्त्तव्य—मैं देखूँगी तुम कर्त्तव्य के कितने पुजारी हो !

उद्विग्नता से धूमती है,
दासी को आवाज़ देती है ।

—दासी

दासी का प्रवेश

हंसाबाई—मंडोवर कुमार से कहना, कल प्रातः मुझे मिले ।

दासी का प्रस्थान

फिर धूमती हे ।

पट-परिवर्तन

महलों में उपवन

श्वेत चबूतरा, चाँदनी रात ।

रणमल और चंड प्रवेश करते हैं ।

चंड—इस जगह ?

रणमल—हाँ इस जगह ! इस श्वेत चबूतरे पर, मौलिश्री के वृक्षों के नीचे, वह अपना मादक गीत गाती है और कुमार मुग्ध होकर सुना करते हैं ।

चंड—राघव ?

रणमल—हाँ युवराज !

चंड—मैं समझा, मैं समझा, वह अब क्यों खोया-खोया-सा रहता है, क्यों अब दिन-प्रति-दिन बे-परवाह-सा होता जा रहा है, क्यों अब जनता के कामों में दिलचस्पी नहीं लेता ?

रणमल—इस सुन्दर गायिका ने.....

चंड—(जैसे अपने से) हाँ, इस सुन्दर गायिका ने.....

रणमल—उन्को अपने आप में नहीं रखा ।

चंड—(जैसे अपने से) यह तो मृत्यु है ।

रणमल—क्या मृत्यु है युवराज ?

चंड—यह रूप का उन्माद ! जब यह कर्तव्य के पथ में रुकावट

बन जाता है, तो इससे मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है, उसकी नैतिक मृत्यु हो जाती है ।

रणमल—वे आ रहे हैं, हमें छिप जाना चाहिए ।

चंड—हाँ, हमें छिप जाना चाहिए । (धीरे धीरे जैसे अपने आप) सो गया, राघव, तू विवेक की आँखें बन्द करके सो गया । किन्तु तुम्हें उठना होगा, मैं तुम्हें उठा कर दम लूँगा ।

दोनों छिप जाते हैं ।

कुमार राघव और भारमली प्रवेश करते हैं ।

राघव (लम्बा साँस लेकर) ओह ! यह कैसी ज्योत्स्ना है ?

भारमली—और उसमें यह धवल, श्वेत चबूतरा !

राघव—जैसे चाँदी के पानी में तैरता हुआ राजहंस ।

भारमली—मौलश्री की मादक सुगन्ध !

राघव—और ठंडी हवा के झोंके ! ऐसे में तुम्हारा थरथराता हुआ मादक गीत ! भारमली, पागल हो जाता हूँ । अपने आप को भूल जाता हूँ । तुम जादू करती हो !

दोनों मौलश्री की छाया में बैठते हैं ।

चाँद की किरणें छनकर दोनों पर पड़ती हैं ।

राघव—भारमली, गाओ ! मेरी आत्मा आकुल हो रही है । वही कल वाला गीत गाओ ! वही गान जो विमुक्त कर दे, भुला दे—भूत और भविष्य को वर्तमान में लीन कर दे !

भारमली—कुमार !

राघव—कहो ?

भारमली—तुम मेरा गाना सुनना चाहते हो ?

राघव—हाँ ! मैं गाना सुनना चाहता हूँ, गाना ही सुनना चाहता हूँ भारमली ! यह मेरे सामने एक अभिनव संसार की रचना कर देता है, जिसमें गत नहीं, आगत नहीं, वर्तमान है, विस्मरण है, भूल जाना है ।

भारमली—तुम केवल मेरा गाना ही सुनने आते हो ?

उसके कन्धे से सिर लगा लेती है ।

कुमार चौंक्ते हैं, पर उठते नहीं ।

भारमली—कुमार !

राघव—(तन्मयता से उम के बालों को सुलझाते हुए)

भारमली ?

भारमली—तुम केवल मेरा गाना ही सुनने आते हो, मैं आज न गाऊँगी ।

राघव—(उसकी ओर मुग्ध नेत्रों से देखते हुए) क्यों भारमली !

चंड वृक्ष के पीछे से निकल कर

सामने आते हैं ।

चंड—राघव !

दोनों चौंक्ते हैं ।

चंड—राघव !

राघव—(बुप)

राघव—राघव मैं क्या देखता हूँ—जिसने अपना सर्वस्व जनता के अर्पण कर दिया हो, उसके लिए क्या यह उचित है।

राघव—(चुप)

चंड—जनता का प्रेम-पात्र बनने के लिए, भाई, इस तुच्छ प्रेम को त्यागना होगा। उस विशाल महान प्रेम के आगे, इस तुच्छ वासनामय प्रेम के लिए कहाँ स्थान है ? राघव ! तुमने जनता की सेवा का व्रत ही क्यों लिया ? जनता का सेवक, जनता का प्रेमी तो उदारता से प्रेम करना जानता है। वह एक का न होकर सब का हो जाता है और तुम अपने उस विशाल प्रेम को इतना संकुचित, इतना सीमित कर रहे हो ! उस उच्च पद से इतना नीचे गिर रहे हो !!

राघव—मुझे.....

चंड—तुम्हें यह सब कुछ छोड़ देना होगा, तुम्हें चित्तौड़ से बाहर चले जाना होगा, संयम सीख कर फिर आना होगा।

राघव—(आँखें धरती में गाढ़े हुए) मैं चला जाऊँगा भाई।

चंड—(भारमाला की ओर देख कर) और भारमाली ! पिता जी ने तुम्हें छोटी माँ के पास रहने की आज्ञा दी है, तुम कल से उधर रहना (राघव से) चलो राघव, (वृक्षों की ओर देखकर) आओ मंडोवर कुमार !

दोनों का प्रस्थान, रणमल भी धीरे से उनके साथ आ मिलता है। भारमाली की ओर कनखियों से देखता हुआ जाता है।

भारमली—(अपने आप) अच्छा तो राठौर ! यह तुम्हारा षड्यंत्र है, परन्तु तुम भारमली को बाँध न सकोगे । वह जायगी जहाँ कुमार जायगी । आकाश में, पाताल में, जल में, थल में । वह अपनी आत्मा को ढूँढ़ेगी और तुम न पा सकोगे उसे राठौर !

तेज़ी से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

चित्तौड़ का राज-प्रमाद
हंसाबाई और रणमल प्रवेश हैं ।

हंसाबाई—इस देश में भाई ! मुझे तुमसे बढ़ कर और किस का महारा है ? राणा राज-काज के कामों में अधिक दिलचस्पी नहीं लेता । वे तो नाम के राणा है, वास्तव में राज तो दोनों कुमार करते हैं ।

रणमल—बहिन, मुझ पर विश्वास करो तो.....

हंसाबाई—भाई पर विश्वास न करूँगी तो किस पर करूँगी । क्या हुआ यदि हम सौतेले बहिन भाई हैं । कहो क्या मैंने सदा तुम से सगी बहिन का सा बर्ताव नहीं किया ? क्या मैं तुम्हें कान्हा से अधिक नहीं समझती रही ? तुम्हारे मंडोवर छोड़ने पर आठ-आठ आँसू नहीं रोयी ?

रणमल—(अत्यन्त विनम्रता से) तुम से बढ़ कर सारे मंडोवर में मेरा कोई हितचिन्तक न था । मैं जानता था कि जब मैं यहाँ परदेश में निर्वासन के कष्ट सह रहा हूँ, मंडोवर के महलों में भी माँ को छोड़कर एक आत्मा है जो मेरे दुख से दुखी है । वह आत्मा तुम्हारी ही तो थी बहिन । माँ के बाद यदि मैंने किसी का प्यार पाया है तो वह तुम्हीं हो । मुझ से छोटी हो, किन्तु तुमने बड़ी बहिनों की तरह मेरा ध्यान रखा है । मैंने भी क्या तुम्हारे

हित के विचार से समय पर सावधान नहीं कर दिया था ? कहो बहिन क्या मैंने नहीं लिखा था ?

हंसावाड़—यह तो होना था, यह तो होना था और जो हो चुका, उस पर मैं क्यों पछताऊँ ?

रणमल—हाँ, यह होना था, पिता जी न मानते तो चंड विवश करता, वह राजपूत है और मुझे उसके दृढ़ संकल्प से भय आता है । (उदासी से) यह तो होना था ! पर इसीलिए मैंने लिखा था कि शर्तें मनवा लेना । अब चंड असहाय है, (खुश होकर) अब वह युवराज न होगा, कुछ ही महीनों की बात है, मेरी बहिन का.....

हंसावाड़—(रणमल के मुँह पर हाथ रखकर और मुस्कराकर) चुप रहो, चुप रहो (गम्भीरता से) मैं कहनी थी कि यदि राज्य का सब प्रबन्ध चंड अथवा कुमार राघव के हाथ ही में रहा तो मैं जैसे रानी हुई, जैसे न हुई ।

रणमल—यही तो मैं भी कहता हूँ कि तुम जैसे रानी हुई, जैसे न हुई । मैं भी यही सोचता हूँ, पर क्या करूँ, मैं तो यहाँ सेवक जैसा हूँ, मुझे जरा भी अधिकार होता तो मैं तुम्हें.....

हंसावाड़—तुम्हें अधिकार मिल जायेंगे, मेरा भाई मेरे ही राज्य में अधिकार-हीन रहे, यह कैसे हो सकता है ?

रणमल—राघव की ओर से तुम निश्चिन्त रहो । प्रजा उसे चंड से अधिक मानती है, किन्तु मैंने ऐसी युक्ति भिड़ायी है कि वह स्वयं

ही चित्तौड़ छोड़ देगा ।

हंसावाई—(उत्सुकता से) कैसे ?

रणमल—यह न पूछो, बस यह निश्चय समझो कि वह चला जायगा और रहा युवराज (धीमे स्वर में) उसके प्रभाव को कम करने के लिए ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि राठौरी को सेना में उच्च पद मिल जायँ, ताकि यदि युवराज चाहे भी तो हमारे विरुद्ध कुछ न कर सके ।

हंसावाई—तुम ठीक कहते हो, मैं महाराणा से कहूँगी ।

रणमल—एक बात और आवश्यक है । भारमली को न जाने देना । राजनीति की शतरंज पर मैं उसे एक गोट बनाना चाहता हूँ ।

हंसावाई—महाराणा ने तो उसे मेरे पास भेजने को कहा था, मालूम होता है, अभी रानी जी का दिल उसे छोड़ने को नहीं चाहता । अच्छा आज देखूँगी । (रणमल से) भाई, तुम जाओ और मुझे अपने उन सैनिकों की सूची दो, जिन्हें तुम किसी पद के योग्य समझते हो ।

रणमल—जैसी तुम्हरी आज्ञा बहिन !

प्रस्थान

हंसावाई—बाजी लगा रही हूँ युवराज, चाहे उल्टी पड़े, चाहे सीधी । तुम्हारा यह दम्भ, यह दर्प मुझसे देखा नहीं जाता, तुम मेरा हाथ झटक कर चले गये, किन्तु स्मरण रखना एक दिन

तुम्हें इसी हंसाबाई के सामने झुकना पड़ेगा अथवा सब अधिकार त्याग कर चित्तौड़ को छोड़ देना होगा ।

राणा लक्ष्मिह का प्रवेश

हंसाबाई—(आगे बढ़कर स्वागत करती हुई) आओ नाथ ! आज आपका चेहरा उल्लासित है, क्या कोई अच्छा समाचार सुनने को मिलेगा ?

लक्ष्मिह—मेरे उल्लास और विपाद का आधार तुम्हीं तो हो, हंस ! जब तुम्हारे मुख पर मुस्कराहट खेलती है तो मेरा हृदय खिल उठता है और जब चाँद पर अवसाद के बादल छा जाते हैं तो मेरे दिल की दुनिया भी अँधेरी हो जाती है !

आकर बैठते हैं और अनिमेष दृश्यों से
हंसाबाई को देखते हैं ।

हंसाबाई—आप मेरी तरफ इस तरह क्यों देख रहे हैं ?

लक्ष्मिह—मैं इस अनुपम सौंदर्य को निहार रहा हूँ । देख रहा हूँ, वह हाथ कैसे होंगे जिन्होंने सुन्दरता की ऐसी प्रतिमा बनायी ।

हंसाबाई—आप मुझे बनाया करते हैं ।

लक्ष्मिह—यह तुम कहती हो हंस ?

हंसाबाई—(रुठने के भाव से) और क्या ! यहाँ आये तो मेरी प्रशंसा कर दी । वहाँ गये तो उनकी प्रशंसा के पुल बाँध दिये ।

लक्षसिंह—हंस !

हंसाबाई—रहने दीजिए महाराज ! आप अपनी आत्मा को क्यों धोखा देते हैं। मैंने कभी आप से कहा कि बड़ी रानी के महलों में न जायँ। मुझे आपका प्रेम चाहिए, सब ओर बँट जाने के बाद जो शेष रह जाय, वही सही। मैं उसे पाकर भी अपने भाग्य को सराहूँगी।

लक्षसिंह—हंस ! (गला भगा है, उठकर घूमते हैं।) मैंने तुम्हारे लिए राज-पाट, स्त्री-पुत्र, सब कुछ भुला दिया।

हंसाबाई—(व्यंग्य से) तभी तो आपको अपने वचन याद नहीं रहते।

लक्षसिंह—कौन से वचन ?

हंसाबाई—जो रोज़ दिये जाते हैं और रोज़ भुला दिये जाते हैं !

लक्षसिंह—कोई बताओ तो सही ?

हंसाबाई—आपने कहा था तुम्हारा मन उदास है, भारमली को भेज दूँगा—आयी भारमली ?

लक्षसिंह—(चौंकर क्रोध से) हैं ! भारमली नहीं आयी ? सच जानना हंस, मैंने तीन बार कहला भेजा है और कल युवराज से भी कहा, वह क्यों नहीं आयी—दासी !

दासी का प्रवेश

लक्षसिंह—भारमली को बुला लाओ !

दासी का प्रस्थान

लक्ष्मिह—और कहो प्रिये ? चाहे भारमली को बड़ी रानी ने स्वयं रखा है, किन्तु यह कैसे हो सकता है कि तुम कोई इच्छा करो और वह पूरी न हो ।

फिर बैठ जाते हैं, हंसा उनके कंधे पर
मिर रखती और मुस्कराती है ।

हंसावाई—और रणमल ?

लक्ष्मिह—रणमल क्या ?

हंसावाई—मेरा भाई, मेरे ही राज्य में एक दास का सा जीवन बिता रहा है ।

लक्ष्मिह—क्या कहा दास ! मंडोवर कुमार तो सरदार है । इस समय भी बीस सहस्र सैनिक उसके अधीन हैं ।

हंसावाई—मेरा भाई केवल बीस सहस्र सिपाहियों का नायक ।

लक्ष्मिह—तो कहो प्रिये, तुम अपने भाई के लिए कौन सा पद चाहती हो

हंसावाई—मैं उसके लिए मन्त्री का पद चाहती हूँ ।

लक्ष्मिह—कल से वह राज्य के मन्त्री होंगे ।

हंसावाई—सेना पर किसका अधिकार होगा ।

लक्ष्मिह—सेनापति का !

हंसावाई—तो महाराज उन्हें सेनापति बना दीजिए !

लक्ष्मिह—चाहे इस समय सेना कुमार चंड के हाथ में

है, पर तुम्हारी इच्छा पूरी होगी ।

दासी का प्रवेश

दासी—(राणा से) कुमार राघव एक विशेष प्रयोजन से आप से मिलना चाहते हैं ।

लक्ष्मि—चलो मैं आया (हंसाबाई से हंस ! तुम निश्चिन्त रहो । तुम्हारा भाई शीघ्र ही सेनापति होगा ।

हंसाबाई—(मुस्कराती है ।)

लक्ष्मि—केवल मुस्कराहट (हँसते है ।) खैर, तुम मुस्कराओ तो हो, यही क्या कम है ?

प्रस्थान

रानी दासी को बुलाती है । दासी का प्रवेश ।

हंसाबाई—(दासी से) भारमली नहीं आयी ?

दासी—रानी जी, वह तो कब की प्रतीक्षा कर रही है ।

हंसाबाई—बुला लाओ !

दासी जाती है और भारमली को बुला जाती है ।

भारमली अभिवादन करती है ।

हंसाबाई—तो तुम भारमली हो ? जिसके गानों की मैंने इतनी धूम सुनी है ?

भारमली—दासी उपस्थित है ।

हंसाबाई—भारमली ! तुम्हारी प्रशंसा बहुत देर से सुन रही हूँ, आज कुछ सुनने को जी चाहता है, इसीलिए तुम्हें बुलाया

है। कोई मोठा मादक गीत गाओ, जिससे मन की शान्ति मिले, सुख मिले।

भारमली—आज रानी जी, मन उदास है।

हंसबाई—(क्रोध से) मन उदास है ! क्या मेरे यहाँ आते ही तुम्हारे मन पर उदासी छा गयी ? वहाँ दिन-रात गाते तुम्हारी तबीयत उदास नहीं होती ? भारमली, मैं यह न सहन कर सकूँगी। तुम्हें गाना होगा।

भारमली—रानी जी, गा दूँगी, किन्तु गाने का सम्बन्ध तो दिल से है ! जब वही स्वस्थ नहीं तो गाना क्या आनन्द देगा ? जिस सितारे के तार ही अस्त व्यस्त हों, उससे स्वर क्या निकलेगा ?

हंसबाई—अच्छा न गाओ ! मैं समझ गयी। किन्तु भारमली, यदि तुम मेरे महलों में न गाओगी तो वहाँ भी न गा सकोगी !

पट-परिवर्तन

एक पहाड़ी पगडंडी

घोड़े की रास थामे राघवदेव प्रवेश करते हैं ।

पीछे-पीछे उनका सेवक हरिसिंह आता है ।

राघव—अत्यन्त दुर्गम मार्ग है हरिसिंह !

हरिसिंह—हाँ महाराज ! अत्यन्त दुर्गम !

राघव—घोड़े पर चलना सर्वथा असम्भव है ।

हरिसिंह—महाराज ! कुछ देर यहीं विश्राम कीजिए, फिर यह सामने जो चढ़ाई है, इसे हम पार कर लेंगे । हमारे साथी भी इतने में पहुँच जायेंगे, बस उनके साथ हम खेलवाड़ा जा पहुँचेंगे, इसके आगे तो सर्वथा सीधा मार्ग है ।

राघव—हरिसिंह !

हरिसिंह—हाँ महाराज !

राघव—चित्तौड़ बहुत दूर रह गया ?

हरिसिंह—बहुत दूर महाराज !

राघव—(दीर्घ-निश्वास छोड़ते हैं ।)

हरिसिंह—क्यों महाराज । दीर्घ-निश्वास क्यों ?

राघव—मुझे यह जागीर पाकर खुशी नहीं हुई । यह मेरा उत्थान नहीं हरिसिंह, यह मेरा पतन है । मैं युवराज की दृष्टि में गिर गया, स्वयं अपनी दृष्टि में गिर गया ।

हरिसिंह—आप थक गये हैं महाराज, आप आराम कीजिए ।

राघव—हरिसिंह । मैं चित्तौड़ को छोड़ना न चाहता था । चित्तौड़ की गली-गली में मेरी आत्मा बसती है, चित्तौड़ का प्रत्येक प्राणी मेरा बन्धु है और चित्तौड़ के पहाड़, सरोवर उपवन—ओह ! हरिसिंह मैं चित्तौड़ से आना न चाहता था । मैं ऐसे हूँ, जैसे निर्वासित कर दिया गया हूँ ।

हरिसिंह—महाराज, आपने स्वयं जागीर माँगी, स्वयं चित्तौड़ को छोड़ने की अभिलाषा प्रकट की ।

राघव—हाँ, मैंने ही जागीर माँगी, स्वयं ही.....(जैसे अपने से) किन्तु मैं क्या करता ? मैं गिरता जा रहा था, मैं गिरता जा रहा था, अपने चरित्र से गिरता जा रहा था, और यह तो पश्चात्ताप है.....(हरिसिंह की ओर मुड़कर) चलो हरिसिंह । विश्राम नहीं, मैंने विश्राम नहीं लिया, चलता ही रहा हूँ तो अब विश्राम क्यों—(फिर अपने आप धीरे-धीरे) पुरानी स्मृतियों को भूल जाऊँ, मोह को छोड़ दूँ । अब नये स्थान पर नया संसार बसाऊँगा, नयी दुनिया का सृजन करूँगा—किन्तु कर भी सकूँगा ? मेरी स्फूर्ति तो जैसे पीछे रह गयी है, मेरी शक्ति तो जैसे पीछे रह गयी है ?

घोड़े को पुचकारते हैं, उसकी पीठ पर हाथ फेरते हैं ।

फिर रास थामे आगे बढ़ते हैं । हरिसिंह पीछे पीछे जाता है ।

पटाक्षेप

चतुर्थ अंक

१

चित्तौड़ की एक वाटिका । मालिन और माली ।
पर्दा उठने से पहले मालिन के गाने का स्वर सुनायी देता है ।

गाओ रे मन मंगल गान

मंगल गान

तेरे घर कान्हा जन्मा ह

राना खुशिया मान

गाओ रे मन मंगल गान

मंगल गान

पर्दा धीरे धीरे उठता है, मालिन बैठी हार गँथ

रही है और माली फूल इकट्ठे कर रहा । मालिन

हार गँथती और गाती जाती है ।

राजा खोल खजाने अपने

कर जी भर कर दान

गाओ रे मन मंगल गान

मंगल-गान

मालिन सुई-धागा रख देती है ।

गूँथे हुए हार को अन्यामनस्कता से फेंकती है ।

मालिन—अब यह मुझसे नहीं होता, यह सब मुझसे नहीं होता ।

माली—(फेंके हुए हार को टोकरे में सजाता हुआ) हो सकेगा, सब कुछ हो सकेगा मेरी रानी ! दिल ज़रा कड़ा कर लो, सोच लो, साल-भर के पैसे आज निकल आयेंगे ।

मालिन—ओह ! मैं थक गयी हूँ, मेरी अंगुलियाँ दुखने लगी हैं, मेरी आँखें दुखने लगी हैं !

माली—फिर आराम होगा, आज के बाद मेरी रानी ! देखो मेरे हाथ—जल्दी के कारण इनमें कितने काँटे चुभ गये हैं, कितनी जगह से रक्त बह निकला है ? किन्तु छलनी भी हो जायँ तो भी मैं फूल लाता रहूँगा ।

मालिन—बैठे-बैठे मेरी कमर दुखने लगी है । मेरी भुजाएँ ऐंठ गयी हैं और यह समाप्त होने में ही नहीं आते, यह फूल, मैं जितना गूँथती हूँ, तुम उतने और ला देते हो ।

माली—यह कुछ नहीं, यह कुछ नहीं, अम्बार भी लगा दूँ तो बहुत नहीं, आज दुगना मोल मिलेगा, देखने तक को हार न मिलेंगे ।

मालिन—दुगना मोल मिलेगा ?

माली—आज खुशियाँ मनायी जा रही हैं, आज उद्यानों में फूल समाप्त हो गये हैं, आज मुँह माँगे दाम मिलेंगे ।

मालिन—दुगने-तिगुने ?

माली—हाँ दुगने, तिगने, जितने चाहेंगे ! आज कुमार का जन्म हुआ है, मेवाड़ के भावी-सम्राट् का जन्म हुआ है ।

मालिन हार गूँथता है ।

मालिन—मेवाड़ के भावी सम्राट् का ?

माली—हाँ ! और सब मन्दिरों में पूजा होगी, समस्त नगर के मन्दिरों में !

मालिन—युवराज चंड अब राज्य न करेंगे ?

माली—नहीं, वे अधिकार छोड़ चुके हैं !

मालिन—ना छोटी रानी का पुत्र ही मेवाड़ का भावी अधिपति होगा ?

माली—हाँ, यही जो आज जन्मा है । प्रसन्नता और उदासी के मिले-जुले भावों के साथ मन्दिरों में पूजा होगी ।

मालिन—उदासी ?

माली—युवराज अब युवराज न रहेंगे, हमारे वीर, साहसी. प्रजावत्सल युवराज !

मालिन—और प्रसन्नता ?

माली—आखिर जन्म तो मेवाड़ के भावी राणा ही का हुआ है, फिर खुशी क्यों न होगी ? आधी रात तक मन्दिरों में पूजा होती रहेगी, आधी रात तक !

मालिन—आधी रात तक ?

माली—हाँ और दीपमाला भी होगी । सब बाजारों में,

समस्त गलियों में, (उबलास से) ओह ! तुमने यह सब समाप्त कर दिये । (फूलों की ओर देखकर) तुम्हारे हाथों में विद्युत का वेग है ।

मुस्करा उठता है ।

मालिन—और न लाओ, मैं थक गयी हूँ, मरने को हो गयी हूँ ।

माली—आज का दिन, बस आज का दिन !

मालिन—तुम हार बनाओ, मैं फूल लाऊँगी !

माली—तुम्हारे हाथ छलनी हो जायँगे, उन में काँटे लग जायँगे !

मालिन—मेरी अंगुलियाँ छलनी हो गयी हैं, सुई से छलनी हो गयी हैं ।

माली—तुम बनाओ मेरी रानी, आज का दिन और, बस, दो चार घंटे ! मैं इतनी जल्दी न बना सकूँगा, मेरे हाथों में इतना वेग नहीं मेरी रानी, अच्छी रानी !

मुस्करा कर चला जाता है ।

मालिन—(मुस्कराती है ।) तुम बड़े चतुर हो, तुम बड़े चतुर हो ।

तेज़ा से हार गूँथती है ।

पट-परिवर्तन

एक पहाड़ी कन्दरा
मशालों की रोशनी में रणमल अपने साथियों
के साथ प्रवेश करता है ।

पहला—यह खोह कितनी अँधेरी है ।

दूसरा—ऐसा लगता है, जैसे दिन के भय से रात यहीं आकर
छिप गयी है ।

पहला—और ठंडी कितनी ?

दूसरा—जैसे शिशिर का शीत !

तीसरा—गहरी ।

चौथा—जैसे पाताल ।

रणमल—इसीलिए सुरक्षित है । ऐसा सुरक्षित और गुप्त
स्थान सारे चित्तौड़ में कोई न होगा, किसे सन्देह हो सकता है
कि यहीं—चित्तौड़ की छाती पर बैठकर—रणमल इस राज्य के
भविष्य पर विचार करता है ?

पहला—यहाँ बैठने को भी कोई स्थान नहीं ?

रणमल—वीरों को बैठने के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता
नहीं । ये ठंडे, सख्त पत्थर ही उनके सिंहासन हैं । यहीं
बैठ जाइए ! आज मुझे आप से एक महत्वपूर्ण विषय पर
परामर्श करना है ।

सब जहाँ-तहाँ उभरे पत्थरों पर बैठ जाते हैं ।

रणमल—(बाघसिंह से) बाघसिंह जाओ, कन्दरा का द्वार बन्द कर आओ और सैनिकों से कह दो कि सावधान रहें ।

बाघसिंह का प्रस्थान

रणमल—आज आप लोगों की कृपा से मेवाड़ की अधिकांश सेना पर राठौरों का अधिकार है, समय आने पर राठौर सिसोदिया वंश का जुआ उतार कर अधीनता के बन्धन तोड़ देंगे और सदैव के लिए मेवाड़ पर अपना आधिपत्य जमा लेंगे ।

एक—हम बेचनी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

दूसरा—वह दिन समीप आ रहा है, केवल आप लोग कटिबद्ध हो जायँ तो दिनों में ही वह सब कुछ हो जायगा जो आज तक नहीं हुआ ।

सब—हम सब प्रस्तुत हैं, सेनापति के इंगित पर अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं ।

रणमल—मैं अनुगृहीत हूँ । आप लोगों के बल पर ही मैं इस बड़े काम का बीड़ा उठा रहा हूँ । आप लोगों ने सुख-दुख में, सर्दी-गर्मी में मेरा साथ दिया है । आप लोगों से मुझे बड़ी आशाएँ हैं । मेवाड़ के राज्य की कुंजी, इस समय हमारे हाथ में है । बड़े-बड़े पदों पर राठौर नियुक्त हैं । अब तो केवल अवसर की देर है, फिर आप लोगों के साहस.....

सब—हमारे साहस का पता अवसर ही देगा ।

रणमल—मुझे ज्ञात है । राठौरों की तलवार का पानी चमक में किसी से भी कम नहीं ! मित्रो, मंडोवर से भी अच्छी सूचनाएं नहीं आ रहीं । पिता जी मरण-शय्या पर पड़े हैं । निर्वासित में, उनके जीवन काल में उनकी आज्ञा के बिना मंडोवर में पाँव नहीं रख सकता और वे मुझे बुलाने क्यों लगे, छोटी माँ बुलाने ही कब देंगी ?

पहला—वह तो काहा को सिंहासन पर बैठायँगी ।

दूसरा—काहा को, जो अभी माँ की गोदी से अलग होने पर रो उठता है !

तीसरा—जो तोनली ज़बान के सहारे जीता है !

चौथा—पाँव वर्ष का दुर्बल और तेज-हीन बालक !

रणमल—छोटी रानी की ऐसी ही इच्छा है । पिता जी ने उसे युवराज भी तो घोषित कर दिया है ।

पहला—मात्र युवराज घोषित कर देने से वह युवराज न हो जायगा । राजमुकुट तो जानता की धरोहर है । यह तो वीरों का गहना है—एक निस्तेज, दीन-हीन बालक का खिलौना नहीं । आपको मंडोवर का सिंहासन विरोधियों के हाथों में न जाने देना चाहिए । अपने अधिकार की रक्षा करनी चाहिए ।

रणमल—किन्तु पिता जी ने.....

पहला—महारावल को क्या अधिकार है कि वे प्रजा की धरोहर दुर्बल हाथों में दे दें। आप उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं, वीर हैं, साहसी हैं, सिंहासन के अधिकारी हैं, आपको मंडोवर की रक्षा करनी चाहिए।

रखमल—मैं तो सेवक हूँ, मैं तो आप लोगों का दास हूँ, राजा प्रजा का सेवक होता है।

सब—आप हमारे राजा हैं, हमारे सिर के ताज हैं।

रखमल—मैं तो सेवक हूँ। मुझे आप जैसे कहेंगे, करूँगा।

पहला—मंडोवर का राज्य आपको अपने हाथ में लेना होगा, उसकी सुव्यवस्था करनी होगी।

रखमल—आपकी जैसी इच्छा होगी, मैं करूँगा।

दूसरा—आवश्यकता पड़ी तो आपको मंडोवर पर आक्रमण करके रानी को अधिकार-हीन करना होगा, नहीं तो मंडोवर राठौरों के हाथ से छिन जायगा।

तीसरा—स्त्री क्या और राज्य-प्रबन्ध क्या ?

रखमल—मैं आप के सद्भावों को जानता हूँ। आप को मुझ दीन से जो प्रेम है, उस के लिए मैं आभारी हूँ। मेवाड़ की समस्त सेना इस समय हमारे हाथ में है। इस की सहायता से मंडोवर को हस्तगत कर लेना कोई कठिन काम नहीं।

पहला—हंसाबाई तो आपत्ति न करेगी ?

रणमल—हाँ हंसाबाई आपत्ति करंगी, किन्तु सब ठीक हो जायगा, सब ठीक हो जायगा। राणा लक्ष्मि सिंह गया के युद्ध पर जा रहे हैं.....

दूसरा—राणा लक्ष्मि सिंह जा रहे हैं ?

रणमल—हाँ ! जाना चाहते हैं। वे दुर्बल होकर, बीमार होकर मरना नहीं चाहते। वे इस पवित्र काम के निमित्त रण-भूमि में वीर-गति को प्राप्त होना चाहते हैं। वे जायँगे और उनके बाद मैं सब कुछ कर सकूँगा।

पहला—और कुमार चंड ?

रणमल—चंड ? उसे हट जाना होगा, उसे मेरे मार्ग से हट जाना होगा। उसे मेरी महत्वाकांक्षा की आग में भस्म हो जाना होगा। वह निर्वासित होगा, उसे निर्वासित कर दिया जायगा।

सब आवाक हारर उसके मुँह की ओर देखते हैं

पट-परिवर्तन

राणा लक्षसिंह और कुमार चंड

लक्षसिंह—नहीं चंड, मैं जाऊँगा ! मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन जाने कब दुर्बल शरीर को मृत्यु का रोग लग जाय ? मैं ऐसा नहीं चाहता—तुम क्या ऐसा चाहते हो ? क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारा पिता राजपूत होता हुआ, सिपाही होता हुआ, मेवाड़ का राणा होता हुआ, युद्ध-भूमि में प्राण देने के बदले, बिस्तर पर तड़प-तड़प कर, एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर जान दे ?

चंड—किन्तु पिता जी.....

लक्षसिंह—कहो बेटा, क्या तुम ऐसा चाहते हो ? अपने पिता के लिए ऐसी दयनीय मृत्यु चाहते हो ? मुझे तो पहले ही देर हो गयी है। यह पाँच-छः वर्ष कुल की मर्यादा और अभिमान के अर्पण हो गये। किन्तु क्या इस से मैं अपनी प्रकृति को बदल सकूँगा।

चंड—नहीं पिता जी, आप वीर हैं। मैं आज गद्गद् हो गया। मुझे ऐसे वीर पिता का पुत्र कहलाने में गर्व अनुभव होता है।

लक्षसिंह—बेटा ! मैंने तुम्हें आज इसीलिए बुलाया है। मैं

शीघ्र ही चला जाऊँगा, यह निश्चित है, ध्रुव है। तुम कहो मैं मोकल के नाम कौन सी जागीर लगा जाऊँ। बाद को भगड़ा न हो, इस विचार से मैं अपने जाने के पहले यह सब कुछ ठीक कर जाना चाहता हूँ।

चंड—मोकल को जागीर पिता जी ? मोकल तो मेवाड़ के स्वामी होंगे और मैं तो उनका सेवक हूँगा।

लक्ष्मि—तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। वंश-परम्परा के अनुसार सिंहासन पर तुम्हारा ही अधिकार है। मुझे तुम सब से प्रिय हो, राज-काज में दत्त हो, मेरे बाद तुम्हीं राजा होगे। इसलिए कहो मैं उसे कौन सी जागीर दे जाऊँ। वह अभी बच्चा है। तुम्हारे ही ऊपर उसके पालन-पोषण का भार रहेगा।

चंड—किन्तु पिता जी, राज्य अब मैं न लूँगा। यह अटल है। वह तो मोकल का हो चुका। मैं तो अब मेवाड़ के भावी राणा का सेवक हूँ और सेवक के नाते जो काम आप मेरे जिम्मे लगायें वह मैं जी-जान से करूँगा। भगवान एकलिंग के सम्मुख मैंने जो शपथ ली, वह क्या यथेष्ट न थी जो आप यह पूछ रहे हैं ? शपथ ! मैं कहता हूँ, यदि मैं शपथ न लेता तो भी मेरा वचन ही काफी था। क्या मैंने भगवान राम के कुल में जन्म नहीं लिया ? आप भगवान राम के वंशज नहीं ? क्या प्राण रहते हमारा वचन झूठा हो सकता है ? आप ने कहा था—तुम्हें सिंहासन

छोड़ना होगा और मैंने उसे छोड़ दिया। अब क्या आप अपनी बात टालेंगे और क्या मैं उस में सहायक गा ? न, ऐसा न होगा। मोकल ही राणा हों, मैं सेवक ही अच्छा।

लक्ष्मिह--(चंड को छाती से लगाकर) चंड, वत्स, मुझे तुम से ऐसी ही आशा थी। अब मैं चैन से जा सकूँगा और क्षीण होती हुई अपनी समस्त शक्तियों को इकट्ठा करके रण में कूद पड़ूँगा। मुझे अब कोई चिन्ता नहीं ! गया के निरीह और निर्बोध यात्रियों पर यवनों के अत्याचार बढ़ रहे हैं। मैं इस अत्याचार को सहन नहीं कर सकता। मैं उस पवित्र भूमि को आततायियों से پاک कर दूँगा और इस अन्तिम कर्त्तव्य से छुट्टी पा जाऊँगा।

चंड--मैं मोकल का पूरा-पूरा ध्यान रखूँगा। एक सेवक की भाँति राज्य की व्यवस्था करूँगा। किन्तु आप यवनों पर विजय प्राप्त करके आ जायेंगे।

लक्ष्मिह--धंड ! विजय मैं चाहे प्राप्त कर लूँ, किन्तु आऊँगा नहीं, मैं आने के लिए नहीं, जाने के लिए जा रहा हूँ। पहले मेवाड़ को आये दिन युद्ध का सामना करना पड़ता था और इससे वृद्धों को रणक्षेत्र में अन्तिम नौद सोना दुर्लभ न था। उनकी अभिलाषा यहीं पूरी हो जाती थी और वे रणभूमि

में शत्रुओं के शवों का सोपान बना कर स्वर्ग-यात्रा करते थे, परन्तु अब युद्ध बन्द हो चुके हैं, लड़ते-लड़ते, वीर-गति को प्राप्त करना दुर्लभ हो गया है, इसलिए मैं गया के आततायियों पर चढ़ाई करूँगा। मैं आयु भर लड़ता रहा हूँ और लड़ते-लड़ते प्राण देना चाहता हूँ। मोकल की रक्षा का भार तुम पर है।

चंड—मैं तैयार हूँ, जो आपकी आज्ञा होगी, वह मैं प्राणपण से पालूँगा।

लक्ष्मि—वत्स ! तुमने जिस पितृ-भक्ति का सबूत दिया है; उसका उदाहरण हूँदे से भी न मिलेगा। दुख यह है कि ऐसे पितृ-भक्ति पुत्र का पिता मैं हुआ, जिसके कारण उसका अधिकार छिन गया।

चंड—अधिकार ! आप लुब्ध न हों पिता जी, राजपूत का अधिकार उसकी तलवार है और रहते दम वह उससे कोई नहीं छीन सकता। रहा यह राज्य ! सो पिता जी चंड आपके चरणों पर सहर्ष ऐसे सहस्रों राज्य निछावर कर सकता है।

लक्ष्मि—मैं तुम्हें क्या आशीष दूँ ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ? (सोचते हैं।) अच्छा मैं यह आज्ञा देता हूँ कि आज के बाद मेवाड़ के महाराणाओं की ओर से जो परवाने और सनदे दी जायँ उन पर भाले का

चिह्न तुम और तुम्हारे वंशज लगायें । मंत्री को बुलाकर मैं इस की घोषणा कर दूँगा ।

चंड — इस सम्मान के लिए मैं कृतज्ञ हूँ ।

नत-मस्तक होते हैं ।

पट-परिवर्तन

खेलवाड़ा में राघवदेव के भवन का एक भीतरी ओसारा

दो पहरेदार बातें कर रहे हैं ।

पहला—वह तो जादूगरनी है । जब गाती है तो श्रोताओं को मुग्ध कर देती है । कोई हिलता तक नहीं । चित्र-लिखित से रह जाते हैं ।

दूसरा—तुमने देखा ?

पहला—देखा—सुना, सब ऐसे थे, मानो उन्हें अपने तन का ज्ञान न हो । उस समय चाहे उन्हें कोई लूट लेता, उनका गला काट लेता !

दूसरा—ऐसा अच्छा गाती है ?

पहला—गाती नहीं, मैंने कहा, जादू करती है । उसकी आँखों में कुछ ऐसी मादक शक्ति है, कुछ ऐसा आकर्षण है कि देखने वाला देखना ही रह जाता है और फिर उसका स्वर, उसका मनोमुग्धकारी स्वर, उसकी चेतनता हर लेता है, उसे मूक, निस्पन्द बना देता है ।

दूसरा—हमारे कुँवर पर भी सुनते हैं, उसने जादू फूँका है ।

पहला—मैं जानता हूँ । मैं जानता हूँ । एक दिन—पहले ही दिन, वह गा रही थी कि उधर से कुँवर गुजरे । उन्होंने घोड़ा

रोक लिया, उसका गीत सुना और होश खो बैठे ।

दूसरा—अब वह यहाँ आती है ।

पहला—और अब आयेगी, बार-बार आयेगी । वह इस जागीर की स्वामिनी होकर रहेगी ।

दूसरा—यह असम्भव है । कुमार प्रजा-पालक और कर्त्तव्य-परायण हैं । एक गायिका के लिए वे प्रजा के हितों पर कुठार न चलायेंगे ।

पहला—किन्तु उसने योंही मन्त्र नहीं फूँका ।

दूसरा—अरे छोड़ो, जादू-बादू क्या ? वह अद्वितीय गायिका है और अनुपम सुन्दरी ! बस यही न ? मैंने तो सुना है, वह चित्तौड़ में भी रही है । वहाँ से राजकुमार यहाँ आ गये तो वह भी आयी । तुम कहते हो । उसने कुमार पर जादू किया है । मैं कहता हूँ कुमार ने उस पर जादू किया है । हमारे कुमार सुन्दर और बलिष्ठ भी कितने हैं ! समस्त मेवाड़ में उन जैसा खूबसूरत कोई न होगा ।

पहला—मैं नहीं मानता, जादू उसी ने किया है ।

दूसरा—अरे कहाँ जादू ?

पहला—तुमने देखा नहीं, तुमने सुना नहीं । (सामने देखकर) देखो, वह आ रही है ।

दूसरा—(दूसरी ओर देखकर) और कुमार भी आ रहे हैं ।

दोनों की जोड़ी कैसी सुन्दर है, जैसे काम और रति दो दिशाओं से मिलने को आ रहे हैं । कुमार विवाह न करेंगे, पर मैं तो कहूँगा दोनों बने एक दूसरे के लिए ही हैं ।

दोनों जाकर तत्परता के दरवज़ों पर खड़े हो जाते हैं ।

एक ओर से भारमली और दूसरी ओर से

कुमार राघवदेव का प्रवेश, भारमली

अभिवादन करती है ।

राघवदेव—तुम फिर आ गयीं भारमली !

भारमली—मैं रुक न सकी कुमार ?

राघवदेव—क्या कुछ और चाहती हो ? भारमली, जो तुम ने कहा, मैंने कर दिया । तुमने कहा, मैं खेलवाड़ा में रहूँगी, मैंने अनुमति दे दी । भाई के साथ जो प्रण किया था, उसके अनुसार मुझे यह न करना चाहिए था । तुमने रंगशाला स्थापित करनी चाही, मैंने आज्ञा दे दी । मैं वहाँ जाना न चाहता था, तुम्हारे अनुरोध पर कई बार वहाँ गया । वापस आता था, प्रण करता था, अब न जाऊँगा, किन्तु तुम आती, फिर चला जाता और वहाँ जाकर अपने-आपको अपनी प्रजा के हितों को—सब को भूल जाता ।

भारमली—(रुद्ध कंठ से) कुमार ! क्या मेरे यहाँ कुछ क्षण आने से प्रजा के हितों की हानि हो जाती है ?

राघवदेव—हाँ, तुम नहीं समझतीं भारमली ! प्रजा के लिए जिन्होंने अपना जीवन दे दिया है, उनसे कैसी आशा रखी जाती है, उन्हें कितना सनक रहना पड़ता है ? और मैं तो अपना कर्त्तव्य भूल जाता हूँ । तुम से मुझे डर लगता है भारमली ।

भारमली—मैं ऐसी ही डर की वस्तु हूँ कुमार, कोई सुनेगा तो हँसेगा ।

राघवदेव—मैं डरता हूँ, मैं बह जाऊँगा, मैं भाई जैसा नहीं, मैं पत्थर नहीं, चट्टान नहीं भारमली । तुम जाओ, खेलवाड़ा से चली जाओ, मेवाड़ से चली जाओ, दूर—बहुत दूर चली जाओ । तुम नहीं जानती, तुम्हें देख कर मुझे क्या होने लगता है । मैं अपने आप को भूल जाता हूँ, अपने कर्त्तव्य को भूल जाता हूँ, मैं कुछ कर नहीं पाता, मैं सोचता रहता हूँ ।

भारमली—क्या सोचते रहते हो ?

राघवदेव—भारमली । तुम जाओ, मैं दुर्बल हूँ, तुम जाओ ।

भारमली—कहाँ जाऊँ कुमार, जाना चाहती हूँ जा नहीं पाती और अब तो..... अब तो.....

आँखें भर आती हैं ।

राघवदेव—क्यों क्यों, क्या बात है भारमली ?

भारमली—मैं नहीं जा सकती, मैं कहीं नहीं जा सकती ।

दोनों हाथों से मुँह छिपा लेती है ।

राघवदेव—क्यों नहीं जा सकती ?

भारमली—मैं डर गयी हूँ, मैं तो आज कहने आयी थी, मैं रंगशाला में नहीं रहूँगी ! तुम मुझे अपने पास आश्रय दो, महलों में आश्रय दो। मुझे डर लगना है, मुझे.....

राघवदेव—महलों में ! नहीं भारमली, महलों में नहीं, मुझे क्षमा करो। मेरी वपों की तपस्या पर पानी न फेरो। मुझे कुछ करने दो—बेलवाड़ा के लिए, मेवाड़ के लिए ! तुम रहोगी तो मैं कुछ न कर सकूँगा। देखो, आज घर-घर में मेरा नाम किस श्रद्धा से, किस भक्ति से लिया जा रहा है। क्या तुम चाहती हो, लोग मेरा नाम ले तो उनके मुखों पर घृणा की रेखाएँ दौड़ जायँ, उपेक्षा प्रतिबिम्बित हो जाय। न भारमली, ऐसा न करो।

भारमली—तो मैं क्या करूँ कुमार, मैं कहाँ जाऊँ, कैसे अपनी रक्षा करूँ ?

सिसकने लगती है।

राघवदेव—(उसके समीप जाकर) भारमली, भारमली !

भारमली—(सिसकते हुए) मैं पकड़ ली जाऊँगी, मैं महसूस करती हूँ, मेरी स्वतन्त्रता छीन ली जायगी। मेरा पीछा किया जा रहा है। मैं अपनी छाया से डरती हूँ, अपने आप से डरती हूँ।

राघवदेव—(जोश से) तुम्हारा पीछा किया जा रहा है, तुम्हें पकड़ना चाहते हैं। कौन है जो तुम्हारा पीछा करता है ? कौन तुम्हें पकड़ना चाहता है ? नाम लो और मेरी तलवार उसके सोने से पार हो जायगी। मेरे राज्य में भय भी रह सकता है ?

भारमली—तुम जानते हो।

सिर को कुमार के कंधे से लगा देती है।

राघवदेव—नाम लो भारमली !

भारमली—रणमल।

राघवदेव—रणमल ! राठौर का यह साहस, उसकी यह स्पृधा ! (तलवार पर हाथ जाता है) कहो, वह यहाँ कब आया, कब उसने तुम्हारा पीछा किया ?

भारमली—तुम्हें चित्तौड़ के सम्बन्ध में भी ज्ञात नहीं कुमार ! अब कुछ ही दिन में वहाँ राठौरों का आधिपत्य हो जायगा। सिसोदिया वंश के हाथ से अब वह निकल गया समझो।

राघवदेव—यह तुम क्या कहती हो। कुमार चंड की उपस्थिति में, मेरी उपस्थिति में यह हो सकता है क्या ?

भारमली—तुम कुछ न कर सकोगे कुमार ! मैं कहती हूँ, तुम देखते रह जाओगे और मेवाड़ सिसोदियों के हाथ

से निकल जायगा ।

राघवदेव—कैसे भारमलो ? यह तुम आज क्या कह रही हो ?

भारमली—और सुनो, स्वयं कुमार ऐसा करने में सहायक होंगे । तुम्हें ज्ञान नहीं, मैं वहाँ से भागो क्यों ? इधर महाराणा के समर-यात्रा करने के पश्चान् उनके आदेशानुसार कुमार चंड ने राज्य का भार अपने कंधों पर ले लिया है और इस कुशलता से उसका संचालन किया है कि समस्त मेवाड़वासी मुग्ध हो गये हैं ।

राघवदेव—फिर वहाँ राठौरों का आधिपत्य कैसे हो सकता है ? साफ-साफ कहो भारमली—पहेलियाँ न बुझवाओ ।

भारमली—इतना भी नहीं समझते ? उनकी इस लोक-प्रियता ने दूसरों के मन में ईर्ष्या और द्वेष की आग सुलगा दी है और उनके शत्रु इस बात की ताक में हैं कि उन्हें अपने मार्ग से हटा दिया जाय । वे पड्यन्त्र कर रहे हैं । रानी के कान भर रहे हैं ।

राघवदेव—शत्रु कौन ?

भारमली—रणमल और दूसरे राठौर । हो सकता है, वे उनकी हत्या कर दें ।

राघवदेव—हत्या कर दें ! भारमली, हमारे रहते वे उनकी हत्या कर दें !! मैं संसार से राठौरों का अस्तित्व मिटा दूँगा ।

मेरे हृदय में धधकने वाली प्रतिशोध की आग एक-एक राठौर को जला कर भस्म कर देगी ।

भारमली—वे यदि हत्या करने में सफल न हों तो रानी स्वयं उन्हें निर्वासित कर देगी । रानी निर्वासित न करे तो वे स्वयं अपने अधिकारों को त्याग देंगे, किन्तु वे मार्ग से हटा दिये जायँगे, यह निश्चित है ।

कुमार चुप हैं, स्तब्ध हैं ।

भारमली—मैं वहाँ से भागी क्यों ? दरबार में, महलों में, नगर में, प्रान्त में, सब जगह राठौरों का आधिपत्य है । युवराज ने राज्य का शासन सम्हालते ही बहुतों को निकाल दिया था, किन्तु रानी ने अपने भाई के अनुरोध पर उनको फिर रखने पर विवश कर दिया । इस स्थिति में क्या आशा रखी जा सकती है ?

राघवदेव—यह तो होना ही था, यह तो होना ही था । युवराज के प्रण का यह परिणाम तो दिखायी ही देता था ।

भारमली—युवराज चले जायँगे तो वहाँ की अवस्था और भी शोचनीय हो जायगी, इसलिए मैं भाग आयी हूँ । रणमल के आदमी मेरे पीछे छाया की तरह रहते थे, इसलिए मैं युवराज के जाने से पहले भाग आयी । मैं तो आश्रय चाहती हूँ । युवराज, तुमने ही मुझे बचाया था, तुम्हीं अब बचाओ । एक बार दुख की खोह से निकाल कर फिर उसमें भटकने

के लिए तो न छोड़ दो । तुम कहते हो—मेवाड़ से निकल जाओ !
कहो, मैं कहाँ जाऊँ ?

राघवदेव—(निश्वास छोड़कर अत्यन्त वेदना के साथ) ओह !
तुम नहीं जानती, मैं किन बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूँ ।

भारमली—अभी तो कुछ नहीं कुमार ! महाराणा की ओर से
कोई सूचना नहीं आयी, किन्तु वे कह गये हैं, मैं न लौटूँगा
और उनके बाद.....

हरिसिंह वबराया हुआ प्रवेश करता है ।

हरि सिंह—कुमार, कुमार !

दोनों हाथों से मुँह ढँपकर रोने लगता है ।

कुमार—(उसे कन्धे से झटक कर) हरिसिंह, हरिमिंह, कहो
क्या बात है ?

हरिसिंह—हमारे महारा !

कुमार—हाँ-हाँ हमारे महाराणा !

हरिसिंह—(सिसकता हुआ) हमारे अच्छे.....हमारे
प्रतापी.....हमारे वीर महाराणा.....

(फिर सिसकता है ।)

राघवदेव—(श्रवण गले से) कहो, कहो मैं सुनने को
तैयार हूँ, पहले क्या नहीं सुना, महाराज नहीं रहे क्या ?
पिता जो.....

हरिसिंह—उन्होंने यवनों को गया से निकाल दिया, किन्तु
वे वापस नहीं आये, लड़ते गये, लड़ते गये और अन्त

को इस वृद्धावस्था में भी बीसियों आततायियों को मृत्यु के घाट उतार कर वीर-गति को प्राप्त हुए

राघवदेव—(रोते हुए) पिता जी, पिता जी हमें छोड़ गये !
अंधकार में, आँधी में, तूफ़ान में.....

रुजाई आ जाती है । आँखों पर हाथ रखे

रोते और लड़खड़ाते हुए चले जाते हैं ।

भारमली—अब कोई क्षण में आँधी आयगी, कौन-कौन से
विपट गिरेगे, कौन जाने ? अपनी रक्षा भी करनी होगी, ये
गिरेंगे तो तू भी गिरेगी ।

तेज़ी से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

हंसाबाई और कुमार चंड

चंड—यह तुम कहती हो माँ ?

हंसाबाई—हाँ, यह मैं कहती हूँ !

चंड—मैं स्वयं राज्य करना चाहता हूँ ?

हंसाबाई—करना क्या चाहते हो, कर रहे हो। राजा को क्या अधिकार प्राप्त होते हैं जो तुम्हें नहीं ? प्रजा पर शासन तुम करते हो, न्याय विचार तुम करते हो, सेना का प्रबन्ध तुम्हारे हाथ में है। रणमल तो नाम का सेनापति है। होता वही है जो तुम चाहते हो। फिर कहो राज्य कौन करता है ?

चंड—यह सब तो मैं एक सेवक के नाते करता हूँ। पिता जी ने स्वयं मेरे कंधों पर जो उत्तरदायित्व रखा, उसे मैं निभा रहा हूँ, जब महाराणा मोकल बालिग हो जायँगे, राज्य का सब भार उन्हें सौंप कर मैं पृथक् हो जाऊँगा।

हंसाबाई—वह बालिग होने ही न पायगा।

चंड—इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है माँ ?

हंसाबाई—जो तुम्हारे मन में है।

चंड—(उत्तेजित होकर) क्या कहा माँ—जो मेरे मन में है। मेरे मन क्या है ? (ज़ोर से) मेरे मन में क्या है ? मैं तो एक

सेवक की भाँति सब काम कर रहा हूँ। राज्य ! यदि मैं राज्य चाहता तो.....ओह मैं क्या कहने लगा था !

हंसाबाई—नहीं, रुको नहीं, सब कुछ कह डालो तुम ! मैं सब समझती हूँ।

चंड—क्या समझती हो ?

हंसाबाई—मैं जानती हूँ, तुम ने इतनी प्रजावत्सलता, न्याय-प्रियता और नीति-कुशलता का ढोंग क्यों रचा है ? आज मेवाड़ में न्याय-प्रिय कुमार चंड को सभी जानते हैं, राजमाता तथा महाराणा मोकल को कौन जानता है ? वे तो तुम्हारे हाथ की कठ-पुतली हैं, खिलौने मात्र हैं। चाहे जिधर घुमाओ, चाहे जब तोड़-फोड़ डालो।

चंड—माता ! (गला भर आता है।) यह अभियोग ! इतना बड़ा अभियोग ! सम्हाल लो अपना यह राज्य, सम्हाल लो काँटो का यह ताज, यह विपत्तियों का भंडार ! तुम समझती हो मैं दिन-रात अपने आप की, अपने स्वास्थ्य की सुध-बुध भुला कर सोते-जागते शासन की व्यवस्था का ध्यान केवल इसलिए रखता हूँ कि मुझे अपना उल्लू सीधा करना है ? मैं कुटिल हूँ, मेरे मन में खोट है ? अच्छा था गरल का घूँट मुझे पिल देती; अच्छा था, मेरा गला घोंट देती; अच्छा था तीक्ष्ण कटार मेरे सीने में भोंक देती; पर यह अभियोग, ऐसा कड़ा अभियोग तो

न लगतीं ! आज से मैं सेवक का पद भी छोड़ता हूँ । आप अपना राज्य सम्हालिए ।

चलते हैं, फिर मुड़ते हैं ।

—एक बात कह जाऊँ माँ, मुझे राज्य की लालसा नहीं, अधिकार की आकांक्षा नहीं, किन्तु भूतपूर्व सेवक के नाते मैं आपकी सेवा को तैयार रहूँगा । मैं जानता हूँ, अब आपको मेरी आवश्यकता नहीं, परन्तु जब कभी हो, निःसंकोच बुला लीजिए ।
सेवक विलम्ब न करेगा ।

प्रस्थान

रणमल का प्रवेश

रणमल—सब सुन रहा था, आपने ठीक ही किया ।

हंसाबाई—मैंने ठीक किया ? कहो क्या यह सब ठीक हुआ ? (शून्य में देखते हुए) ड ने अपने अधिकार छोड़ दिये !

रणमल—आप ने जिस नीति से काम लिया, वह तो बड़े-बड़े नीतिज्ञों को भी न सूझ पाती । मैं होता तो इस भाँति, इस सुगमता से उन्हें राज्य छोड़ने के लिए उत्तेजित न कर सकता । मालूम होता है बहुत दुख हुआ ।

हंसाबाई—(उसी तरह देखते हुए) चंड ने सब अधिकार छोड़ दिये । मैंने ऐसा नहीं सोचा था । अब शासन का प्रबन्ध कैसे होगा ?

रणमल—आप करेंगी । आप राजमाता हैं । आप स्वयं महाराणा की ओर से शासन करें और आप की सहायता को आप का यह सेवक उपस्थित है ।

हंसाबाई—और क्या हो सकता है। मुझे तो तुम पर ही भरोसा है। इस प्रकार शासन का प्रबन्ध हो कि चंड को अनुपस्थित जनता को न अखरे। ऐसा न हो कि जनता विद्रोह का भंडा खड़ा कर दे।

रणमल—जनता—जनता की स्मरण-शक्ति बहुत कमजोर होती है बहिन। वह भूलना अधिक जानती है। आप देख लेंगी कोई चंड को जानेगा भी नहीं। सब महाराणा और राजमाता के गुण गायेंगे।

हंसाबाई—तो जाओ घोषणा कर दो। कल से स्वयं राजमाता राजकाज की देख-भाल करेगी।

रणमल—जो आज्ञा।

प्रस्थान

तेजा के साथ धाय का प्रवेश

धाय—छोटी रानी !

हंसाबाई—(चुप)

धाय—मैं क्या सुनती हूँ, बड़ा कुँवर जा रहा है ?

हंसाबाई—हाँ वह अपनी इच्छा से जा रहे हैं।

धाय—अपनी इच्छा से जा रहा है या तूने उसे निकाल दिया है ?

हंसाबाई—वे मोकल के स्थान पर स्वयं राणा होना चाहते थे।

धाय—(उत्तेजित होकर) छोटी रानी, यह तू कहती है, विवेक रखते हुए भी यह तू कहती है ! चंड स्वयं राज्य चाहता है, यह बात कहने से पहले लज्जा और ग्लानि से तेरा मुँह बन्द नहीं हो गया, आत्मा ने तुझे नहीं फटकारा; तेरी जीभ ऐंठ नहीं गयी ? कुँवर राज्य चाहता तो ले न सकता था ?

हंसाबाई—माँ !

धाय—आज जो तू मेवाड़ की राजमाता बनी बैठी है, यह किस की कृपा है ? चंड चाहता तो क्या राज्य ही न ले सकता था ? राणा राज्य दे रहे थे, उसने न लिया । अपने प्रण पर अटल रहा । तू सती होने लगी थी, उस ने तुझे रोक दिया, नहीं तो आज, जहाँ बड़ी रानी चली गयी हैं, वही तू भी चली जाती । वह राज्य चाहता तो तुझे मरने देता । फिर उसे कौन अधिकार जमाने से रोक सकता था ? अधिकार जमाना कैसा ? अधिकार तो उसी का था ! उस की सेवा का, उसके त्याग का तूने यह फल दिया । कहो अब उसके बाद शासन का काम कौन सम्हालेगा ?

हंसाबाई—रणमल !

धाय—अच्छा, यह आग उसी की लगायी है । यह कुचक्र उसी का चलाया हुआ है । तेरी आँखें न हों छोटी रानी, तू चाहे देखकर भी न देखे, किन्तु मैं कहे देती हूँ, उसका मन साफ

नहीं। चंड जा रहा है, मैं कहती हूँ अब भी उसे मना ले। वह चला गया तो मोकल न रहेगा, हंसाबाई न रहेगी, सिसोदिया वंश न रहेगा.....खड़ी है, हिलती नहीं। तू न जा, मैं जाऊँगी, सिसोदिया वंश के हित के लिए जाऊँगी, महाराणा मोकल की रक्षा से निमित्त जाऊँगी और कुँवर को मना कर लाऊँगी।

तेज़ी से प्रस्थान

हंसाबाई—धाय क्या कह गयी, रणमल धोखा देगा? वह हमें हटाकर स्वयं मेवाड़ का शासक बन जायगा? क्या ऐसा हो सकता है? (अन्य में देखने हुए) क्या कृष्णता इतनी विनम्र, इतनी विनीत हो सकती है?

उद्विग्नता से घूमती है।

—किन्तु कुछ भी हो, राज्य रहे या जाय, अधिकार रहे या न रहे, चंड को मनाने न जाऊँगी, कभी भी न जाऊँगी।

सोचते-सोचते चली जाती है।

पट-परिवर्तन

दो नागरिक प्रवेश करते हैं ।

पहला—चंड चले गये और अपने साथ ही मेवाड़ का सुख और शान्ति भी ले गये !

दूसरा—सुना है, माँडू के सुलतान ने बड़े आदर से उनका स्वागत किया, उनके निवास के लिए विशाल भवन देकर उन्हें अपने दरबार में एक उच्च-पद पर नियुक्त कर दिया ।

पहला—वीरों को किस बात की कमी है ? वे जहाँ भी जायें, सम्मान उनके पाँव चूमता है । भाग्य तो मेवाड़ का खोटा है, जिसके मुकुट से एक अमूल्य रत्न खो गया ।

दूसरा—वे स्वयं कहाँ गये ? उन्हें विवश कर दिया गया ।

पहला—हाँ, राजमाता ने उन्हें विवश कर दिया ।

दूसरा—वह मेवाड़ के शत्रुओं के हाथ में खेल रही है । वह नहीं जानती, उसने क्या कर दिया है, वह नहीं जानती, वह क्या कर रही है । भगवान एकलिंग मेवाड़ की रक्षा करें !

पहला—अब तो दरबार में पड्यन्त्रों का राज्य है, नगर में अत्याचारों का शासन है । कहो, अब किस की धन-सम्पत्ति

सुरक्षित है, किस की मान-प्रतिष्ठा सुरक्षित है ? अब कौन खुले
 किवाड़ गहरी नींद सो सकता है ? वह उत्साह, वह खुशी कहाँ
 है ? मेवाड़ पर भय का साम्राज्य है और समस्त प्रदेश इस भाँति
 सहम गया है जैसे बाज को उड़ते देखकर पक्षी सहम जाते हैं ।

दूसरा—अरे वह देखो. सेनापति आ रहे हैं । शीघ्र चलो,
 कहीं किसी और विपत्ति में न फँस जायँ ।

दोनों जल्दी-जल्दी चले जाते हैं ।

रणमल अपने एक सैनिक के साथ आता है ।

रणमल—अजित ! पिता जी को मरे आज तीसरा दिन है ।
 एक निमिष भी देर न करनी चाहिए ।

अजित—हमारी सेनाएँ तैयार हैं, केवल आपके इशारे की देर
 है । राठौर सैनिक अपने युवराज को उसका अधिकार दिलाने के
 लिए मंडोवर पर दूट पड़ेंगे ।

रणमल—और मेवाड़ की सेनाएँ ?

अजित—सब राठौर सेनापतियों के अधीन हैं ।

रणमल—कुमार चंड माँडू में हैं, सेनाओं पर अपना अधिकार
 है, महाराणा नाबालिग हैं, अब कौन है जो मेरे मार्ग की बाधा
 बन सकता है ? वह दिन शीघ्र आयगा जब मेवाड़ और मंडोवर
 एक राठौर-साम्राज्य के अधीन होंगे और सिसोदियों के मंत्र
 का जादू टूट जायगा ।

अजित—राघवदेव ?

रणमल—वह खेलवाड़ा में है। इस से पहले कि उसे इन सब बातों की सूचना मिले, उस का जीवन-दीप बुझा दिया जायगा। अजित, हम किसी को भी न छोड़ेंगे। शताब्दियों की दासता की बेड़ियाँ काट डालेंगे। सिसोदियों के बदले अब समस्त राजपूताने पर राठौरों का आधिपत्य होगा। इस बात के लिए मैंने कितना प्रयत्न नहीं किया ! कई रातें मैंने इसी सोच में बिता दी हैं। प्रधान मंत्री के होते हुए, दोनों कुमारों के होते हुए, राघवदेव को चित्तौड़ से बाहर कर देना क्या सुगम था ? और फिर चंड को अधिकार छोड़कर माँझ में निर्वासितों का-सा जीवन बिताने पर विवश करना, क्या सरल था ? किन्तु मैंने सब किया। और उसका यह फल है कि मेरे समस्त साथी उच्च पदों पर नियुक्त हैं। क्या मंडोवर में ऐसा हो सकता था।

अजित—आप के साथी आप के इंगित पर अपने प्राण निछावर करने को तैयार हैं कुमार !

रणमल—कहो, हंसाबाई को सन्देह तो नहीं हुआ ? मैंने बाघसिंह को नगर में यह अफवाह फैलाने की आज्ञा दी थी कि मेवाड़ पर यवन आक्रमण करना चाहते हैं। इसलिए सेना को लेकर स्वयं सेनापति सीमा पर जायँगे।

अजित—नहीं, राजमाता को सन्देह नहीं हुआ। वह इसी भ्रम में है कि यवनों के आक्रमण को रोकने की तैयारी हो रही है। यदि उसे ज्ञात हो जाय कि यह चढ़ाई उसके भाई के विरुद्ध की जा रही है तो वह न जाने क्या कर दे ?

रणमल—क्या करेगी ? वह चाहे भी तो कुछ नहीं कर सकती। मेरे जाल में वह इस तरह जड़ती हुई है कि निकलना कठिन है, असम्भव है, (धीरे से) किन्तु मैं चाहता हूँ वह न जाने, मैं चाहता हूँ, वह भूलो रहे, अभी समय नहीं आया। तुम जाओ, सेना को आज रात के पहले पहर ही यहाँ से चलने के लिए तैयार रहने का आदेश दे दो।

अजित—जो आज्ञा।

प्रस्थान

रणमल—सूरज छिप रहा है। धीरे-धीरे अस्ताचल की ओट में जा रहा है और रात भयानक अंधकार को लिये हुए बढ़ी आ रही है। किन्तु मुझे यह अंधकार पसन्द है। इसी अंधकार में मेरे कितने ही रहस्य छिपे हैं, कितने ही भेद निहित हैं।

ढोल पीटने की ध्वनि आती है।

—शायद बाघसिंह इधर ही आ रहा है।

बाघसिंह और ढोल लिये हुए एक मुनादी

करने वाले का प्रवेश

—कहो नगर में मुनादी करा दी ?

बाघसिंह—हाँ महाराज, समस्त नगर में मुनादी करा दी है कि मेवाड़ पर यवन आक्रमण करने की सोच रहे हैं। मेवाड़-वासियों को अपनी रक्षा के हित, अपनी धन-सम्पत्ति की रक्षा के हित युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए।

रणमल—ठीक है, ठीक है। (मुनादी वाले को एक मुद्रा देकर) जाओ, हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं।

ढोल वाला जाता है।

—(बाघसिंह से) सुनो बाघसिंह ! मैं आज सन्ध्या को सेना लेकर प्रस्थान करूँगा। तुम मेरे पश्चात् इस रहस्य को खुलने न देना। जब तक मैं मंडोवर को जीत कर वापस मेवाड़ नहीं पहुँच जाता, तब तक किसी को यह ज्ञात न हो कि मैंने किधर चढ़ाई की ?

बाघसिंह—क्या आप मंडोवर में न रहेंगे ?

रणमल—नहीं, मुझे मंडोवर की मरु-भूमि से मेवाड़ की उर्वरा, हरियाली भूमि अधिक पसन्द है। मैं अपने साम्राज्य का केन्द्र चित्तौड़ ही की बनाऊँगा।

बाघसिंह—फिर मंडोवर पर चढ़ाई करने से क्या लाभ ?

रणमल—तुम नहीं जानते, जाओ, जैसे मैं कहता हूँ वैसे ही करो।

बाघसिंह—जो आज्ञा।

प्रस्थान

रणमल—(अपने आप) मैंने क्यों चढ़ाई की है, तुम क्या जानोगे बाघसिंह ? छोटी माँ ने हृदय में जो घाव लगाये हैं, वे अभी नहीं भरे, अभी उन की जलन उसी प्रकार हृदय को जलाये जाती है। एक असह्य वेदना से मैं तड़पता रहता हूँ। यह जलन उसी दिन समाप्त होगी, जब गर्विणी छोटी माँ इसी मूर्ख के कदमों पर झुककर दया की भिक्षा माँगेगी।

पट परिवर्तन

रात का पिङ्गला पहर

रानी तारा कान्हा को अपनी छाती से चिमटाये पड़ा है,
पौयते की आर धरती पर दासी सो रही है ।

रानी—(चौंरु कर) दासी, दासी !

दासी—(उठकर) क्या बात है, महारानी क्या बात है ?

रानी—जाओ, तुम मंत्री को बुला लाओ ! हम सुरक्षित नहीं हैं, हम सुरक्षित नहीं हैं । अनिष्ट की आशंका मेरी नस-नस में समायी जाती है । तुम जाओ, मंत्री को बुला लाओ ! हम यहाँ नहीं रहेंगे, हम दोनों माँ-बेटा कहीं चले जायँगे, कहीं दूर चले जायँगे ।

दासी—नहीं महारानी, भय की कोई बात नहीं । आप केवल डर गयी हैं ।

रानी—डर गयी हूँ, शायद मैं डर गयी हूँ । हाय ! मैंने कितना भयानक स्वप्न देखा !

दासी—स्वप्न !

रानी—मैंने देखा, ओह ! (दीर्घ-निद्रावास छोड़ती है ।) मैंने देखा, अंधेरा है, चारों ओर अंधेरा है, घटाटोप अंधकार है और मैं कान्हा की अँगुली थामे चली जा रही हूँ, चली जा रही हूँ । मार्ग

नहीं दीखता, फिर भी बढ़ती जा रही हूँ। फिर भयानक आँधी आती है। बिटप काँप उठते हैं, धरती डोल जाती है, आकाश रह-रह कर आग फेंकता है। इस तूफ़ान में कुँवर का हाथ मेरे हाथ से छूट जाता है। मैं चीखती हूँ। मैं अँधेरे में कुँवर के लिए चीखती हूँ।

दासी—भयानक स्वप्न है ! (सान्त्वना देते हुए) किन्तु इसमें यथार्थता कुछ भी नहीं। हमारे कुँवर सौ वर्ष जियें ! आज बाहर भूकड़ चल रहा है और इसीलिए आपको ऐसा बुरा सपना आया है। आज प्रातः तो उनका राज्याभिषेक होगा।

रानी—मुझे राज्याभिषेक नहीं चाहिए। मैं ऐसे ही भली, मेरा बच्चा मेरी गोदी में बना रहे, मुझे और कुछ न चाहिए।

दासी—महारानी ! अधीर न हों। अभी कुछ घड़ियों के बाद समस्त मंडोवर में खुशियाँ मनायी जायँगी। उल्लास का नृत्य होगा। आप के कुँवर मंडोवर के राणा होंगे और आप राजमाता कहलायेंगी।

रानी—किन्तु यह भयानक काली रात, आँधी का यह अट्टहास, यह घन-गर्जन, यह प्रलय का शोर, मेरा हृदय धड़क रहा है। तुम जाओ दासी ! मंत्री को बुला लाओ !

दासी—अभी रात काफ़ी है महारानी और दिन भर आप व्यस्त रहेंगी, इसलिए सो रहें।

रानी—वह दिन आयगा भी या नहीं ! मुझे जैसे कोई खींचे लिये जा रहा है, खींचे लिये जा रहा है और कह रहा

है—वह दिन न आयगा, वह दिन न आयगा । वह देखो, बड़ी रानी जैसे ठहाका लगा रही है, हँस रही है । कह रही है, अब मेरा समय है, अब मेरी बारी है !

दासी—बड़ी रानी—वे तो मर गयी, सती हो गयी ।

रानी—हाँ, सती हो गयी, न होना चाहती थी । वह सती होने से पहले अपने कुँवर को देख लेना चाहती थी, पर मैंने उसे सती होने पर विवश कर दिया । मैंने उसे मर जाने को, अपनी अन्तिम अभिलाषा साथ लिये हुए मृत्यु की गोद में सो जाने को, विवश कर दिया और अब दिन-रात मेरी आँखों के सामने उसका भयानक मुख, तनी हुई भृकुटी, लाल-लाल आँखें घूमती रहती हैं । मैं सुनती हूँ जैसे वह कहती है—‘अब मेरी बारी है’, ‘अब मेरी बारी है !’

दासी—यह कुछ नहीं । आप का भ्रम-मात्र है, बाहर केवल आँधी चल रही है ।

रानी—(शून्य में देखते हुए) आँधी चल रही है ?

दासी—हाँ आँधी चल रही है ।

रानी—मेरे हृदय में भी आँधी चल रही है । एक भयानक तूफान मचा हुआ है । सारी रात मुझे नींद नहीं आयी । मैंने सुना है, हंसा ने अपने राज्य में रणमल को ही सर्वे-सर्वा बना दिया है । यह उसने अच्छा नहीं किया । जिस पौधे को मैं कुचल कर फेंक देना चाहती थी, उसे ही उसने अपने स्नेह से सींचा है, किन्तु वह

साँप है। मैं जानती हूँ, दूध पीकर भी काटेगा, फन चलायगा।

वायु के वेग से खिड़की का पट खुल जाता है, झिलमिला
कर दिया बुझ जाता है, एक दासी घबरायी हुई
प्रवेश करती है।

दासी—(घबरायी हुई आवाज़ में) महारानी भागिए ! महारानी
भागिए ! सेनापति मारे गये !

रानी—(आतंक से) सेनापति मारे गये ?

दासी—हाँ, नगर के द्वारों पर, गलियों में, बाजारों में सब
जगह युद्ध हो रहा है ?

रानी—विद्रोह हो गया है ?

दासी—नहीं।

रानी—तो क्या हुआ है, कहो, जल्दी कहो ?

दासी—कुँवर रणमल ने आक्रमण वर दिया है।

रानी—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) मैंने सोचा था, मैं डरती थी।
तो भागूँ, किधर भागूँ, हाथ-पाँव फूल रहे हैं।

बाहर से शोर सुनायी देता है।

दासी—महारानी भागो ! महारानी भागो ! चलो मैं कुँवर को
बठाती हूँ।

रानी—हाँ चलो, भागो, उस निर्दयी के हाथों से कुँवर की
जान बचाने के लिए, मैं भागूँगी—जंगलों, पहाड़ों की ठोकरें
खाऊँगी। चलो, भागो ! न भाग सकी तो रणमल के हाथों उसके

जीवन का अंत देखने से पहले मैं स्वयं अपने हाथों उसका गला घोट दूँगी !

चली जाती है ।

बाहर कोलाहल बढ़ रहा है ।

रणमल हाथ में तलवार लिये प्रवेश करता है ।

रणमल—अधेरा है—शायद भाग गयी, किन्तु भागकर जायगी कहाँ ? अजित मशाल लाओ ।

अजित मशाल लाता है, दूसरे सैनिक भी आ जाते हैं ।

—कहाँ है अत्याचार की वह मूर्ति ? मुझ को अयोग्य, निकम्मा, कायर और मूर्ख कहने वाली, अभिमानिनी, गर्विणी, छोटी माँ ? आये और देखे, इस मूर्ख के मस्तिष्क में कितनी वृद्धि है, इस कायर की भुजाओं में कितना बल है । कहाँ है उमरा कुँवर, वह पाँच वर्ष का निर्बल, तेजहीन बालक, जो आज मेरे स्थान पर मंडोवर का रात्र बन रहा था ।

हाथों में बच्चे का शव लिये हुए उन्मादिनी

की भौंति रानी का प्रवेश

रानी—लो यह है कुँवर ! तुम्हारे हाथों इसे मरता देखने के बदले मैंने स्वयं इस चिर-निद्रा में सुला दिया है । तुमने भागने के सब द्वार बन्द कर दिये, तुम ने चाहा, हमें बन्दी बनाओगे, हमारा अपमान करोगे । तुम्हारी यह कामना पूरी न होगी । मैंने अपने हृदय के दुकड़े को अपने हाथों मसल डाला, अपनी आँखों की ज्योति को अपने हाथों नष्ट कर दिया, अपने घर के उजाले

को स्वयं अंधकार में परिणत कर दिया—आज मैं माँ होकर भी डायन हो गयी । देखो इसकी यह मुरझायी हुई सूरत, इसकी यह फटी-फटी आँखें, यह तुतलाने वाली बाहर को निकली हुई जोम, यह निस्पन्द और निष्प्राण देह । मैंने इसका गला घोट दिया । जैसे पिशाच के हाथों देने के बदले मैंने पिशाचिनी होना स्वीकार कर लिया । मेरा पुत्र बन्दी होता, दास बनता, अपमान की आग में जलता । न, मुझे यह स्वीकार न था । वह मर गया, कुँवर होता हुआ मर गया, राणा होता हुआ मर गया, कुछ क्षण के लिए इसके प्राणों का मोह मेरे हृदय में डर उठा था; मेरे दिल में भय का संचार हुआ था; मैं भागने को तैयार हो गयी थी । किन्तु अब क्या डर है ? मैं स्वयं कुछ क्षण की मेहमान हूँ । मैंने हीरे की कनी चाट ली है । विष मेरी नस-नस में दौड़ रहा है । इतनी दूर सेना लेकर एक निरीह, निर्बोध बालक को बाँधने चढ़ दोड़े थे, लो बाँध लो ! बन्दी बना लो !

बच्चे को उसके पाँवों पर पटक देती है ।

और स्वयं अचेत होकर गिर पड़ती है ।

सब स्तम्भित, अवाक्, स्तब्ध देखते रह जाते हैं ।

पटाक्षेप

पंचम अंक

१

हंसाबाई और धाय

हंसाबाई—मैं क्या करूँ ? कुछ समझ नहीं आता । तुम्हीं बताओ माँ, मैं तो विवश हूँ, असहाय हूँ !

धाय—तुमने, छोटी रानी, यह काँटे अपने हाथों बोये हैं ।

हंसाबाई—जले पर नमक न छिड़को माँ ! उत्थान में किस की आँखें अंधी नहीं हो जाती ? किस के पंख नहीं लग जाते, फिर मैं तो साधारण स्त्री हूँ । मैंने बुरा भी क्या किया ? यदि बहिन अपने भाई के साथ—उस भाई के साथ जो सौतेला है, जिसे उस की माँ ने निकाल दिया है—प्यार करती है तो क्या बुरा करती है । यदि सौतेली बहिन, अपनी माँ के दुर्व्यवहार का पश्चात्ताप करती हुई, निर्वासित भाई से सद्व्यवहार करती है तो क्या बुरा करती है ! उसे क्या मालूम कि वह विष-वृक्ष को अपने स्नेह से सींच रही है ? उसे क्या मालूम कि वह आस्तोना में साँप पाल रही है ?

धाय—मैंने कहा था, सावधान कर दिया था ।

हंसाबाई—किन्तु मैंने सुना नहीं। उस समय मैं अंधी थी, बहरी थी, मुझे अपने महारानी होने का गर्व था, अपने राजमाता होने का गर्व था। अब कहाँ है वह गर्व ? परिस्थितियों ने उसे पीस कर रख दिया है और मैं असहाय, लाचार, बेबस तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। महाराणा परलोक सिधार गये और कुँवर, उसकी जान का भय दिन-रात बना रहता है। कौन शत्रु है, कौन मित्र, समझ में नहीं आता। अपने पराये बन बैठे हैं। माँ, बताओ, सुभाओ, कहो, मैं क्या करूँ ? कैसे मेवाड़ के इस रत्न की, सिसोदिया वंश के इस दीपक की रक्षा करूँ ? यह न रहा तो अंधेरा हो जायगा ! मुझे दंड दो, किन्तु इसे बचाओ, इसकी रक्षा करो !

धाय के पाँवों पर झुकती है।

धाय—(उठाकर छान्ती से जगाती हुई) छोटी रानी, यह क्या ? क्या मेवाड़ की राजमाता, आज इतनी असहाय, इतनी दीन हो गयी कि धाय के आगे, एक साधारण धाय के आगे झुकने को तैयार है ? (गला भर आता है।) उठो मेरी रानी, मेरी छोटी रानी, मेरे जीते जी तुम्हें कोई हानि न पहुँचा सकेगा, महाराणा मोकल का बाल बाँका न कर सकेगा। मैं कवच बनकर उसकी रक्षा करूँगी, मैं ढाल बनकर शत्रुओं के प्रहारों को रोकूँगी।

हंसाबाई—(रोते हुए) मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। माँ मेरा कोई

नहीं। माँ नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं, स्वामी नहीं, ले-देकर यही बच्चा है। कौन जाने वह—निर्दयी वह—जिसके आतंक से मंडोवर और मेवाड़ के वनों में पक्षी तक अपने घोंसलों में दुबक जाते हैं, कब मेरा अथवा मेरे बच्चे का जीवन-दीप बुझा दे ? मैं तुम से प्रार्थना करती हूँ, कोई युक्ति बताओ, जिससे हम इस महल में, इस राज्य से निकल भागें और तब तक कहीं छिपे रहे, जब तक कुँवर बालिश न हो जाय, अपना अधिकार लेने के योग्य न हो जाय।

धाय—तुम भाग न सकोगी रानी ! भले ही तुम राजमाता हो और कुँवर महाराणा है, किन्तु वास्तव में तुम दोनों बन्दी हो। तुम्हारे हर काम की देख रेख होती है।

हंसाचाई—तुम सत्य कहती हो माँ ! (अपने आप से) मैं रानी हूँ, मेवाड़ के शासक की माँ हूँ !

वाटिका से मालिन के गाने की आवाज़ आती है

आ कोयल हम मिल-जुल गाये
गाये सुख के गान
पत्ता-पत्ता नाच रहा है
नाच रहे हैं प्राण

—गा, फूलों की दुनिया में बिचरने वाली स्वतन्त्र मालिन,
गा ! खुश हो कि तू रानी नहीं, मेवाड़ के शासक की माँ नहीं !
तेरे पाँवों में अधिकार की बेड़ियाँ नहीं !

उद्विग्नता से घूमती है ।

धाय—रानी ! तुम उसे क्यों नहीं लिखती ! एक बार लिख दो, वह सिर के बल दौड़ा आयगा । वह महाराणा की रक्षा करेगा, तुम्हारी रक्षा करेगा !

हंसाबाई—मैं कैसे लिखूँ, मैंने स्वयं अपना मार्ग रोक दिया है, स्वयं अपने पाँवों पर कुठार चलाया है ।

धाय—यह सब भूल जाओ रानी ! तुम लिखो । चार पंक्तियाँ लिखो । पहुँचाने का प्रबन्ध मैं कर दूँगी !

हंसाबाई—यदि वह न आयें ?

धाय—न आये, तुमने चंड को समझा ही नहीं । वह आयगा, अपने कर्तव्य की जंजीरों में बँधा, वह आयगा । मैं तो सोचती हूँ, वह अब तक क्यों नहीं आया ? संकोच के मारे बैठ रहा होगा, वह आने को तैयार होगा; नहीं तो अपने भाई को, मेवाड़ के महाराणा को इस संकट में देखकर भी स्वामि-भक्त वह बैठा न रहता । तुम लिखो, पढ़ते ही अपने सहायकों के साथ वह चला आयगा ।

हंसाबाई—लिखूँ भी तो वह एक दिन में थोड़े ही आ सकेंगे । फिर इतने दिन क्या किया जाय ? मोकल को कहाँ छिपाया जाय ? अब वह सिंहासन पर रणमल के पास बैठा है, उसकी गोदी में बैठा है । मैं किस तरह उसे छिपा लूँ, उसके पास जाने से रोक दूँ ?

धाय—बीमारी का बहाना कर दो और जब तक चंड की ओर से कोई उत्तर नहीं आता तब तक उसे बाहर न निकालो । मैं इस का प्रबन्ध कर दूँगी ।

हंसाबाई—तुम ने देखा नहीं, रणमल की नीयत साफ नहीं । वह जब भी मोकल की ओर देखता है, उसकी दृष्टि उसके मुकुट पर जम जाती है । उसकी आँखों में लालसा काँपा करती है । मैं डर जाती हूँ ।

धाय—मैं जानती हूँ, उसके मन में क्या है ।

हंसाबाई—उसने मेरे भाई और माँ की हत्या कर दी और फिर बाहना बना दिया, कह दिया—मैं उनकी मृत्यु न चाहता था । मैं तो केवल उनसे मिलने गया था, किन्तु उन्होंने शत्रु समझकर मुझ पर आक्रमण कर दिया । मैं उसकी बात को सत्य नहीं मानती । हाय ! उसे यहाँ क्या प्राप्त नहीं था ? क्यों न उससे अपने छोटे भाई का सुख देखा गया ? (आँखें भर आती हैं ।) उन बेवसों को उसने आत्म-हत्या करने पर विवश कर दिया । (निश्वास छोड़ती है ।) मैं उस पर प्रकट नहीं होने देती । मैं अपने व्यवहार में अंतर नहीं आने देती, किन्तु माँ, तुम जानती हो, मेरे हृदय में कैसा बवंडर उठ रहा है, इस हत्यारे के प्रति मेरे हृदय में घृणा की कैसी आग जला करती है ?

धाय—विलम्ब न करो छोटी रानी, पत्र लिखो । मैं उसे

तत्काल पहुँचाने का प्रबन्ध कर दूँगी ।

हंसाबाई—ग्रन्था लिख देखती हूँ । जब मनुष्य डूबने को होता है तो वह तिनके का भी आसरा तकता है । (अपने आप) कुमार ! अपना गर्व, अपना अभिमान छोड़कर मैं तुम से रक्षा को भीख माँगती हूँ । चाहती थी, तुम्हारा दर्प चूर-चूर कर दूँगी किन्तु तुम चट्टान की भाँति अटल खड़े हो और मेरा दर्प मिट्टी के खिलौने की तरह टूट चुका है ।

हंसाबाई बैठ कर लिखती है ।

धाय खड़ी देखती है ।

पट-परिवर्तन

महलों का एक उद्यान ।

मोकल एक पहिया दौड़ाता आता है,

उसके पीछे-पीछे बालक हैं । पहिया

गिर जाता है । बालक उस पर झुकते हैं ।

पहला—अब बस करो, अब हमारी बारी है ।

दूसरा—तुम्हारी कहाँ, हमारी बारी है । अब हम दौड़ेंगे ।

तीसरा—जी ! तुम दौड़ोगे, दो बार तो दौड़ चुके तुम, हम ने हाथ भी नहीं लगाया ।

चौथा—हाँ हाथ नहीं लगाया ! पहले पहल किसने बारी ली थी ?

तीसरा—वह तो कुछ क्षण के लिए थी !

चौथा—चाहे कुछ हो, चलाया तां था और हम ने हाथ लगाकर भी नहीं देखा ।

पाँचवाँ—(सब को परे हटाकर) और हम, हम, अब के हमारी बारी है ।

मोकल—तुम पहले निर्णय कर लो, इतने में मैं एक चक्कर लगा आऊँ ।

पहिया चलाता हुआ भाग जाता है ।

‘सब हमारी बारी है’, ‘हमारी बारी है’,

कहते हुए उस के पीछे भागते हैं ।

(अजित के साथ रणमल का प्रवेश)

रणमल—भारमली का कुछ पता आया ?

अजित—वह खेलवाड़ा में है ।

रणमल—यह तो बहुत पहले की बात है । मैंने उसे पकड़ लाने के लिए जो आदमी भेजे थे, उनकी कोई ख़बर आयी ? तुम्हें मालूम नहीं अजित, भारमली कैसे षड्यन्त्र खड़े कर सकती है ? उसका स्वतन्त्र रहना राठौरों के आधिपत्य के लिए कितना हानिकर है ।

अजित—अंतिम सूचना जो मिली है, उस से यह पता चला है कि वह कुमार राघव के पास चली गयी है और उनके ही आश्रय में खेलवाड़ा के दुर्ग में रहती है ।

रणमल—राघव के आश्रय में चली गयी ! भारमली मैं देखूँगा, तू मुझ से कहाँ भाग सकती है; कब तक भाग सकती है । तू संसार के किसी कोने में चली जा, मेरे प्रयत्नों का जाल तुम्हें वहाँ से भी बाँध कर ले आयगा । राघव के पास—यदि राघव न रहा तो कहाँ जायगी ? अजित !

अजित—महाराज !

रणमल—बाँस को ही काट दो ।

अजित—समझा नहीं महाराज !

रणमल—न बाँस रहेगा, न बाँसुरी बजेगी (उसके कान में कुछ कहता है ।) तुम सैनिकों के साथ भेस बदल कर नगर में

छिप जाना और फिर तत्काज दुर्ग पर अधिकार करके भारमली को गिरफ्तार कर लाना ।

अजित—सुना है, राघव मांडू गये हैं । कोई पड्यन्त्र करना चाहते हैं ।

रणमल—ज्यों ही वहाँ से वापस खेलवाड़ा पहुँचे, पोशाक पहुँचा देना और उन दोनों को साथ भेज देना ।

अजित—ऐसा ही होगा । किन्तु पोशाक क्या कहकर भेजी जाय ?

रणमल—ब्रह्मना बना देना कि महाराणा मोकल के जन्म-दिन की खुशी में भेजी गयी है ।

अजित—जो आज्ञा ।

प्रस्थान

रणमल—(आकाश की ओर) राघव ! राघव ! तुझे दंड भोगना होगा, मेरे और भारमली के बीच कूदने का दंड भोगना होगा; मेरे विरुद्ध पड्यन्त्र करने का दंड भोगना होगा । मैं पड्यन्त्रों से नहीं डरता । इस से पहले कि तेरे मस्तक में उनकी कोई रूप-रेखा बने, तेरा मस्तक ही न रहेगा ।

पहिया दौड़ते हुए मोकल का प्रवेश । पीछे अन्य बालक

भागते आते हैं । नेपथ्य के पास जाकर पहिया

गिर पड़ता है । लड़के उस से पहिया

छीनते हैं, वह नहीं देता ।

कीमल—(नेपथ्य से) मामा, मामा !

रणमल धीरे-धीरे जाते हैं ।

धाय प्रवेश करती है ।

५/५—छाया की भाँति मैं तुम्हारा पीछा करूँगी, नियति की तरह तुम्हारे सिर पर मँडराऊँगी । रणमल ! तू लालसा की आँखों से मोकल को देखता है, तेरी आँखों में हिंसा है, किन्तु आज के बाद तू मोकल की छाया को भी न पा सकेगा ।

नेपथ्य में—मेरा मुकुट दे दो, मेरा मुकुट दे दो मामा !

धाय—(नेपथ्य की ओर देखती हुई) ऐं ! तूने मेवाड़ का राज-मुकुट अपने सिर पर रख लिया । तुम्हारा यह साहस, तुम्हारी इतनी स्पृद्धा । राजवंश दुर्बल है इसलिए न, किन्तु जैसे तुमने पट्यन्त्र से यह सत्ता प्राप्त की है, उसी तरह यह तुम से छीन ली जायगी । (दासियों से) तुम वहाँ जाकर छिप रहो, मैं अवसर मिलते ही मोकल को लेकर भागूँगी, ठोकर खाकर गिर पड़ूँगी और तुम मोकल को लेकर महलों में भाग जाना । राठौर की नीयत कुछ अच्छी मालूम नहीं होती । वह देखो, वे सब इधर ही आ रहे हैं, इसलिए छिप जाओ ।

सब छिप जाती हैं । रणमल मोकल का ताज सिर पर रखे

प्रवेश करता है । पीछे-पीछे मचलता

हुआ मोकल आता है ।

मोकल—मेरा मुकुट दे दो मामा, मेरा मुकुट दे दो ।

रणमल—तुम खेल रहे हो, यह मुकुट गिर जायगा; खराब हो जायगा ।

मोकल—(मचलता है) मेरा मुकुट, मेरा मुकुट !

रणमल—(धीरे-धीरे अपने आप से) आज कुछ क्षण के लिए मेवाड़ का मुकुट अपने सिर पर रखने की लालसा इतनी प्रबल क्यों हो उठी ? इसे किसी समय भी लिया जा सकता है । चाहूँ तो अभी ले लूँ ।

मोकल की ओर बढ़ता है ।

—आओ तुम मेरे पास आओ !

मोकल—नहीं, मैं तुम्हारे पास नहीं आता ।

रणमल—तो मैं मुकुट न दूँगा ।

मोकल—मैं तुम से लड़ूँगा ।

रणमल—(मुस्कराता हुआ) कैसे लड़ोगे ?

मोकल—तलवार से लड़ूँगा, सेना से लड़ूँगा, मेरा मुकुट दे दो !

रणमल—(भुकुटो तन जाती है ।) इस नन्हीं सी जान में इतना गर्व, जिसे अभी अंगुलियों में मसल सकता हूँ । इस छोटी सी जीभ में इतनी तेजी, जिसे अभी तालू से खींच सकता हूँ ! (हँसता है ।) आओ मेरे पास आओ ।

मोकल—(पीछे हटता है ।)

रणमल—(इधर उधर देखकर) कोई नहीं, को नहीं । लड़के दूर खेल रहे हैं, सेवक उन के कौतुक देखने में निमग्न हैं, माली अपनी भौपड़ी में चला गया है । सूरज पर बादल छा गये हैं, आकाश की आखें बन्द हो गयी हैं (एक हिंस्र ज्वाला उसकी आँखों में चमक उठती है ।) बढ़कर मोकल को उठाता है ।

मोकल—माँ, माँ !

मचलता और चीखता है । धाय निकलती है ।

धाय—क्या है बेटा, क्या बात है ?

रणमल धाय को देखकर मुस्कराता है

और मुकुट मोकल के सिर पर रख देता है ।

रणमल—(खिसियाना होकर) लो लो, रोओ मत !

मोकल—माँ, माँ !

धाय उसे गोद में उठा लेती है ।

मोकल—माँ, मैं जाऊँगा, माता जी के पास जाऊँगा ।

धाय—चलो मेरे लाल ! तुम्हारी माता प्रतीक्षा कर रही होंगी ।

मोकल को लेकर चली जाती है ।

रणमल—फिर निकल गया, फिर अवसर निकल गया, किन्तु कब तक ? अन्त को एक दिन.....

नेपथ्य में किसी के गिरने तथा चीत्कार का शब्द

धाय—(नेपथ्य से घबरायी हुई आवाज़ में) कोई आइयो, कोई

दौड़ियो ! मोकल अचेत हो गये, महाराणा अचेत हो गये !

रणमल चौकता है, धीरे-धीरे जाता है ।

रणमल — (नेपथ्य में) क्या हुआ, कहाँ है मोकल ?

धाय — (नेपथ्य में) उस को चोट आ गयी । दासियाँ उसे महलों में ले गयीं । राज-वैद्य को बुलाओ ।

रणमल — (नेपथ्य में) कैसे चोट आ गयी ?

धाय — (नेपथ्य में) उन्हें लिये जाती थी कि ठोकर खाकर गिर पड़ी । उनके चोट आ गयी और वे अचेत हो गये । तुम बुलवाओ, राज वैद्य को बुलवाओ ।

रणमल तेज़ा के साथ प्रवेश करता है,

कुछ दूर चलकर रुकता है, नेपथ्य

की ओर देखकर ताली बजाता है ।

—ओ, ओ !

भागते हुए सेवक का प्रवेश

—जाओ । राज-वैद्य को बुला लाओ ! कहो, शीघ्र आये ।
महाराणा को चोट लग गयी है

सेवक का प्रस्थान

—यह ठीक है, वैद्य द्वारा ही यह काम हा ।

लँगड़ाती हुई धाय का प्रवेश

धाय—तुम जाओ, तुम स्वयं जाओ !

रणमल—(सोचकर) हाँ, मुझे ही जाना चाहिए ।

धाय—अब तुझे उस की शक्ल भी दिखायी न देगो पिशाच !
महाराणा महलों में सुरक्षित रहेंगे, कोई उन के पास न फटक
पायेगा ।

लँडगाते हुए प्रस्थान

पट-परिवर्तन

मांडू में कुमार चंड का निवास-स्थान ।

चंड और राघव बातें करते हुए प्रवेश करते हैं ।

चंड—मैं भी मनुष्य हूँ राघव, एक दुर्बल मनुष्य ! देवता नहीं मैं ।

राघव—अधम, नीच और स्वार्थी लोगों से भाई, आप बहुत ऊँचे हैं, किन्तु फिर भी आपको इस तरह चित्तौड़ छोड़कर न चले आना था ।

चंड—वही मैंने कहा राघव ! मैं मनुष्य हूँ । इतने बड़े अपमान के पश्चात् कोई देवता ही चित्तौड़ में रह सकता था ।

राघव—किन्तु भाई.....

चंड—मैं तुम्हें क्या बताऊँ राघव, जब छोटी माँ ने मुझ पर यह अभियोग लगाया, जब उसने कहा, तुम महाराणा होना चाहते हो, मोकल को अपने मार्ग से हटाना चाहते हो, उस समय मेरी क्या दशा हुई । धरती मेरे पाँवों के नीचे से खिसकती हुई दिखायी दी । सिर पर सहस्रों वज्र टूटते हुए प्रतीत हुए । इतना बड़ा अभियोग राघव ! और फिर मुझ पर, जिसने राज्य की आकांक्षा ही नहीं की ! कभी स्वप्न में भी इच्छा नहीं की !

समझ और सोच मेरा साथ छोड़ गये और उसी सन्ध्या को राव रणमल को राज्य का सब काम सौंपकर मैं वहाँ से निकल आया। चित्तौड़ से बाहर निकलकर मैंने सुख की एक सांस ली। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे अब तक मैं आग पर चल रहा था। यहाँ आकर मेरे हृदय को ठंडक मिली, शान्ति मिली, भोल सरदार मेरे साथ आये, मैंने रोका भी, वे न रुके। मांडू के मुलतान ने, कोई नाता न होने पर भी, आश्रय दिया—यह जागीर दी। किन्तु माँ ने, जिसके लिए मैं प्राणों को भी कोई महत्व न देता था, मुझ पर इतना बड़ा अभियोग लगा दिया। फिर तुम कहते हो मुझे चित्तौड़ न छोड़ना चाहिए था।

राघव—किन्तु भाई आपने परिस्थितियों पर विचार नहीं किया। आप का निश्छल हृदय माँ द्वारा लगाया गया अभियोग सुनकर तड़प उठा। आपने चित्तौड़ छोड़ दिया। यह न सोचा, आप के चले आने से चित्तौड़ पर क्या बीतेगी।

चंड—मैं विवश था। सेवक का काम सेवक रहने ही में है, स्वामी बनने में नहीं।

राघव—भाई आप तो महान हैं। मैं अधम आप को कर्त्तव्य का पाठ क्या पढ़ाऊँगा, किन्तु जिस प्रकार अपने राजा को विपत्ति में देखकर प्रजा का एक साधारण व्यक्ति भी उसकी रक्षा कर

सकता है, इसी प्रकार आप भी जाकर रणमल को देश से निकाल सकते हैं ।

चंड—बिन बुलाये भाई मैं यह नहीं कर सकता । यद्यपि मैंने सेवकाई छोड़ दी है, यहाँ मांडू मे एक निर्वासित का जीवन बिता रहा हूँ, फिर भी आज्ञा होने पर मैं स्वामी के लिए अपनी जान तक भी निछावर कर सकता हूँ । आज यदि छोटी माँ कहें तो मैं एक रणमल क्या, समस्त राठौरों को चित्तौड़ से भगा दूँ । किन्तु उनकी आज्ञा बिना उनकी व्यवस्था मे मैं कैसे देखल दे सकता हूँ ?

राघव—आप को ज्ञात होगा, राजमाता स्वयं संकट अनुभव कर रही हैं । न जाने उन्होंने क्यों अभी तक आप को नहीं बुलवाया।

चंड—मैंने सब कुछ सुना है । रणमल के षड्यन्त्रों का हाल सुना है, उसकी कूट-नीति का हाल सुना है और सुना है कि बाप्पा रावल के सिंहासन पर इस समय राठौर राज्य कर रहा है । उसके अत्याचारों की, जनता की बेबसी की कहानी सुनकर मेरा रक्त खौल उठा है, किन्तु मैं विवश हूँ ।

राघव—क्या आपने पिता जी को वचन न दिया था ?

चंड—क्या ?

राघव—कि आप महाराणा के बालिश होने तक राज्य का काम चलायेंगे ।

चंड—हाँ दिया था !

राघव—फिर क्या यह आपका कर्त्तव्य न था कि आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते ?

चंड—भाई, तुम एक बात भूल जाते हो। सिंहासन का अधिकार छोड़ने के साथ ही मेरा अपना अस्तित्व कुछ नहीं रह जाता। मैं राज्य का अधिकारी नहीं, केवल एक सेवक हूँ। पहले पिता जी का सेवक था, अब राजमाता का सेवक हूँ और जब स्वामी की दृष्टि फिर जाय तो सेवक का कर्त्तव्य यही रह जाता है कि वह सब कुछ छोड़कर अलग हो जाय।

राघव—चाहे उसमें स्वामी का अहित हो।

चंड—यह विचारना सेवक का काम नहीं।

राघव—भाई मैं आप से छोटा हूँ, मेरी बुद्धि भी छोटी है, किन्तु मैं इतना समझता हूँ कि आप के पुरखों का राज्य दूसरों के हाथ में चला जा रहा है। आप कब तक बैठे, सत्य और असत्य, पुण्य और पाप, ईमानदारी और बेईमानी पर विचार करते रहेंगे ?

चंड—मैंने मेवाड़ को त्यागा नहीं। जब भी मेवाड़ के राणा अथवा राजमाता को मेरी आवश्यकता हो, मैं सब अपमानों को भूलकर चला जाऊँगा। अपने प्राणों का मोह छोड़कर मेवाड़ के मान-हेतु लड़ूँगा। वे बुलायें तो सौ बार जाऊँगा, चाहे मैं तिरस्कृत

होकर आया हूँ, अपमानित होकर आया हूँ ! हाँ, अनधिकार चेष्टा मैं न करूँगा ।

सेवक का प्रवेश

सेवक—महाराज, चित्तौड़ से राजमाता का भेजा हुआ दूत आया है ।

चंड—बुला लाओ !

राघव—उन्होंने आप को बुलाया होगा । मैं पहले ही कहना था, उन्होंने आप को बुलाया होगा ।

दूत का प्रवेश । अभिवादन करके एक चिट्ठी देता है ।

चंड पढ़ते हैं ।

चिरंजीवी चंड,

केवल दो शब्द लिखूंगी, यद्यपि मैंने वह अधिकार खो दिया है, किन्तु फिर भी और कुछ लिखने का समय नहीं । इस समय मेवाड़ का राज-मुकुट, मेवाड़ का महाराणा, राजमाता, मेवाड़ का अस्तित्व तक संकट में है । सब ओर अँधेरा है, केवल तुम्हारी ओर से प्रकाश की एक हल्की-सी रेखा आती है । अपने लिए तो मैंने वह आशा भी खो दी है, किन्तु मेवाड़-वासियों के लिए, उस अबोध बालक के लिए, मैं तुम से सहायता की भीख माँगती हूँ । तुम बोर हो, सहृदय हो, मेरे लिए न सही, अपने मेवाड़ के लिए आओ—शीघ्र ! देर से आने पर कुछ न हो सकेगा ।

तुम्हारी दुखी माँ

हंसाबाई

चंड—इन पंक्तियों के पीछे भाई कितनी व्यथा छिपी है !

राघव—माँ बहुत दुखी प्रतीत होती हैं !

चंड—(दूत से) जाओ, तुम राजमाता से कह दो कि वे चिन्ता न करें। किसानों में खैरात बाँटने के बहाने वे दुर्ग के आस-पास के गाँवों में प्रतिदिन जाना आरम्भ कर दें। दीपमाला को सन्ध्या को मैं चित्तौड़ के बाहर गोसुंडा के मन्दिर में उनसे मिलूँगा।

दूत का प्रस्थान

—(सेवक से) तुम जाओ, भील सरदार को बुला लाओ।
(राघव से) मैं भीलों को वापस भेज दूँगा कि वे अपने बाल-बच्चों को देखने के बहाने चित्तौड़ चले जायँ और फिर वहाँ रहकर दुर्ग के फाटकों पर पहरेदारों के रूप में भरती होने का प्रयास करें। दीपमाला के दिन मैं स्वयं सेना लेकर प्रस्थान करूँगा और उस दिन राठौरों के अत्याचारों का खात्मा हो जायगा। तुम निश्चिन्त होकर अपनी जागीर पर जाओ।

राघव—जो आज्ञा!

प्रणाम करने के पश्चात् राघवदेव का प्रस्थान

चंड मस्तक पर हाथ रखकर सोचते हैं।

पट-परिवर्तन

खेलवाड़ा में राघवदेव का राजभवन
भारमली और राघवदेव

भारमली—तुम नहीं जानते, नहीं समझ सकते, किस बेचैनी से मैंने ये दिन काटे हैं। तुम पूछते हो मैंने अपना प्रण क्यों तोड़ा ? तुम्हारे महल में क्यों चली आयी ? (दीर्घ-निश्वास छोड़ती है ।) तुम्हें क्या बताऊँ ? मैं कैसे अपने आपको अब तक रोक सकी हूँ। किन्तु आज तो हृद हो गयी ! मैंने ऐसी अनहोनी बातें देखीं—ऐसी अनहोनी ! कि मैं अपने को रोक न सकी। कुमार ! कोई विशेष विपत्ति तुम पर आने वाली है। प्रातः से अपशकुन हो रहे हैं।

राघव—(हँसता है ।)

भारमली—तुम हँसते हो ! उस नन्हें बालक की तरह, जो अग्नि की ज्वाला को देखकर हर्ष से बावला हो जाता है, नहीं जानता इस में जलाने की शक्ति भी है, किन्तु जरा मेरे चेहरे की ओर देखो, यह चिन्ता से कितना सूख गया है, इन आँखों को देखो, इनमें कितनी जागृत रातें छिपी पड़ी हैं। और इस हृदय पर हाथ रखो, यह कैसा धड़क रहा है।

राघव—भारमली, भारमली, तुम्हें क्या हो गया है, तुम पागल हो गयी हो ?

भारमली—दिन को उल्लू बोलते हैं, श्वान रोते हैं, सियार एक विचित्र प्रकार का चीत्कार करते हैं, आकाश का रंग रक्त जैसा लाल रहता है। अनहोनी बातें हो रही हैं। यह सब अशुभ लक्षण हैं। यह किसी की मृत्यु की सूचना देते हैं, किसी महान व्यक्ति के निधन की ओर संकेत करते हैं।

राघव—क्या कभी आगे उल्लू नहीं बोले, श्वान नहीं रोये, बिल्लियाँ नहीं चिल्लायीं, सियार नहीं चीखे ? प्रकृति सदैव अपने मार्ग पर चलती रहती है, यह हमीं हैं, जो अपने मन के विकारों के अनुसार अर्थ निकालते रहते हैं।

भारमली—और सपने, यह भयानक सपने, जो मैंने इन दिनों देखे। मैंने देखा, मेरे कमरे में टंगा हुआ तुम्हारा चित्र गिरा और टुकड़े-टुकड़े हो गया है और उससे रक्त की नदियाँ बह निकलीं। मैं चौंकर उठी। उसी समय विजन में उल्लू बोलने लगा। हृदय जोर से धक-धक करने लगा। सारी रात मैं सो न सकी। रह-रह कर वही स्वप्न आँखों के सामने आता रहा। मैं तुम्हारे कुशलपूर्वक आने की प्रार्थना करती रही।

कुमार हँसता है।

—फिर एक दिन मध्याह्न के समय मैं लेटी हुई थी कक्षकी आ गयी। मैंने देखा एक मरुस्थल है और उसमें तुम भागे जा रहे हो, तुम्हारे शरीर पर घाव ही घाव हैं और

मरुस्थल की धरती रक्त से लाल हो रही है। मेरा शरीर काँप गया। सारा दिन मैं बेचैन रही, रात सपने में मृत राणा दिखायी दिये। यह सब अपशकुन ! मैं घबरा गयी—मैं रुक न सकी।

राघव—किन्तु देखो, मैं सकुशल आ गया हूँ।

भारमली—तुम आ गये हो, इस बात से मैं प्रसन्न हूँ, किन्तु देखो, मेरी दायीं आँख प्रातःकाल से फड़क रही है, मैं घबराकर आने लगी तो बिल्ली मेरा मार्ग काट गयी, मैं फिर वापस चली गया। फिर आने लगी तो एक गिद्ध चीख उठा। फिर तीसरी बार आयी तो मार्ग में एक मृत व्यक्ति की अर्थी मिली।

एक सेवक का प्रवेश।

एक सेवक—महाराज, चित्तौड़ से राजदूत आये हैं और आप के लिए पोशाक लाये हैं ?

राघव—पोशाक ?

सेवक—हाँ महाराज ! महाराणा मोकल के जन्म-दिन की खुशी में राजमाता की ओर से भेजी गयी पोशाक।

राघव—उन्हें बैठाओ, मैं आया।

भारमाली—मुझे खटका है, मेरा दिल काँप रहा है, आशंका मेरी नस-नस में समायी जाती है। आप आज कहीं न जायँ।

राघव—भारमाली क्या कहती हो, क्या मैं जागीर के कामों से हाथ खींच लूँ ? मैं सात दिन के बाद आया हूँ। कितनी ही बातें मुझे देखनी हैं, कितनी ही जगह मुझे जाना है।

भारमली—आज न जायँ, कुमार, मुझे आज एक ज्योतिषी ने बताया है। आज के दिन आप कहीं न जायँ।

राघव—भारमली ! तुम एक राजपूत को डराती हो। उसे मृत्यु से भय दिलाती हो। मृत्यु ही तो उसका प्रधान खेल है। तलवारों की झंकारों में वह इसी के तो खेल खेलता है। किन्तु तुम गायिका हो न, एक कोमल हृदय कोमलाँगी गायिका, तुम में राजपूतनी का दिल कहाँ ?

प्रस्थान

भारमली—कुमार, कुमार !

किवाड़ तक उस के पीछे जाती है।

पट परिवर्तन

खेजवाड़ा के एक मकान का कमरा

पिछली दीवार की खिड़की से एक व्यक्ति बाहर की ओर

देख रहा है। खिड़ाड़ पर दस्तक होते हैं। वह

नहीं सुनता, फिर ज़ोर-ज़ोर से दस्तक होती है।

वह—(मुड़कर) कौन है ?

आवाज़—मैं हूँ, दरवाज़ा खोलो।

दरवाज़ा खोजता है, हरिसिंह प्रवेश करता है।

वही व्यक्ति—अरे, तुम किधर से ? यह क्या हाल बनाया है ?

हरिसिंह—(पसीना पोंछता हुआ) चित्तौड़ गया था, वहीं से
आ रहा हूँ। बड़ी कठिनाई से यहाँ पहुँच पाया हूँ। इतनी भीड़ !
आज बात क्या है ?

जाकर खिड़की में देखता है।

वही व्यक्ति—कुमार कत्ल कर दिये गये ?

हरिसिंह—(मुड़कर) कौन कुमार ?

वही व्यक्ति—कुमार राघव ?

हरिसिंह—(चौंकर) ऐं, कुमार राघव ! किसने उनकी
हत्या की ? कौन ऐसा हत्यारा है जिसे ऐसे प्रजा-वत्सल,
न्याय-शील शासक से द्वेष था। आकाश से आग की वर्षा
होगी और सारा नगर उसमें जल उठेगा। धरती अपना

गर्त खोल देगी और ये लोग, ये सब कृतघ्न लोग, उस में समा जायँगे ।

वही व्यक्ति—प्रजा में से किसी ने उनकी हत्या नहीं की !

हरिसिंह—तो फिर किसने की ?

वही व्यक्ति—उसने, जो मेवाड़ पर भय का राज्य कर रहा है !

हरिसिंह—मेवाड़ पर तो महाराणा मोकल राज्य कर रहे हैं । राजमाता राज कर रही हैं । क्या विमाता की द्वेषाग्नि कुमार चंड को निर्वासित करके शान्त न हुई थी जो.....

वही व्यक्ति—राजमाता की आज्ञा से हत्या नहीं हुई ?

हरिसिंह—तो फिर किसकी आज्ञा से हुई ?

वही व्यक्ति—(धीरे से, रहस्य-भरे स्वर में) रणमल की आज्ञा से । वास्तव में राज्य तो वही करता है । महाराणा मोकल और राजमाता तो पुतलियाँ हैं, जिन्हें जैसे वह चाहता है, नचाता है । अब तो किसी दिन तुम सुन लोगे महाराणा मोकल की हत्या—मेवाड़ पर राठौर का शासन !

हरिसिंह—और युवराज ?

वही व्यक्ति—चंड ! वे धर्म-सूत्र में बँधे हैं, वे मेवाड़ न जायँगे । राघव का डर था, सो उन्हें इस तरह मार्ग से हटा दिया गया । रहे बालक राणा, उनका क्या है ? किसी क्षण भी वे मृत्यु की गहरी खोह में फेंक दिये जा सकते हैं ।

हरिसिंह—भगवान एकलिंग मेवाड़ की रक्षा करें !

वही व्यक्ति—अब स्वयं लकुटीश ही रक्षा करें तो कुछ हो सकता है। लक्ष्मण तो बुरे हैं।

हरिसिंह—कुमार का बध हुआ कैसे ? कुमार कहाँ थे, उनके सैनिक कहाँ थे ?

वही व्यक्ति—अभी कल कुमार मांडू से आये थे। वहाँ शायद बड़े भाई से मिलने गये थे। आज दो दूत महाराणा मोकल के जन्म-दिन की खुशी में चित्तौड़ से एक पोशाक लाये और कहा कि राजमाता ने इसे भेजा है। मातृ-भक्त, स्वामि-भक्त कुमार ने ज्योंही अपनी दोनों भुजाएँ चोले में डालीं कि उन नीचों ने अपने भयानक छुरे उन के शरीर में भोंक दिये।

हरिसिंह—शिव, शिव ! उन कायरों को किसी ने पकड़ा नहीं ?

वही व्यक्ति—वहाँ पकड़ता कौन ? राठौर सेनाएँ गुप्त रूप से खेलवाड़ा में प्रवेश कर चुकी थीं, दुर्ग पर उन्होंने आक्रमण कर लिया था। सेवक कुमार के मृतक शरीर और भारमली के साथ भागे। भारमली पकड़ ली गयी और कुमार की अर्थी अब ले जायी जा रही है।

हरिसिंह—(आश्चर्य से) भारमली—उसे तो कुमार ने महलों में आने से रोक दिया था। वह फिर वहाँ क्यों गयी थी।

वही व्यक्ति—शायद उसे इस षड्यन्त्र की आशंका थी और वह कुमार की सावधान करने गयी थी।

हरिसिंह—(निश्वास छोड़कर) उसी के लिए तो यह सब कुछ

हुआ, यह कुमार की असामयिक मृत्यु भी ! अब कुमार को पितृदेव* की पदवी मिलेगी, बाप्पा रावल के वंश में और किसकी ऐसी मृत्यु हुई । आज के दिन घर-घर उनकी पूजा हुआ करेगी ।

वही व्यक्ति—और समस्त जागीर में ऐसा विद्रोह उठेगा जो दबाये न दब सकेगा, जो आततायियों को, उनके अत्याचारों को जड़ से उखाड़ कर ही शान्त होगा ।

हरिसिंह—(मुड़कर) मैं जाता हूँ । मैं चैन न पा सकूँगा । मैं खेलवाड़ा को राठौर के अधीन होते न देख सकूँगा । प्रजा में जोश है, लोहा तप रहा है, अभी चोट पड़नी चाहिए ।

प्रस्थान

वही व्यक्ति—ठहरो, मैं भी आया, तुम जायोगे तो मैं कब पीछे रह सकूँगा ।

प्रस्थान

पट-परिवर्तन

*मेवाड़ में यह रिवाज था कि जब राज वंश में किसी की अचानक तथा असामयिक मृत्यु हो जाता थी तो उसे पितृदेव की पदवी मिल जाती थी और घर-घर उसको पूजा होती थी ।—‘टांड राजस्थान’

दीपमाला की मन्थ्या

चित्तौड़ के फाटक पर दो पहरेदार

पहला—युवराज नहीं आये। यह अत्याचार अब असह्य हो रहा है। कुचक्रों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ मेवाड़ आर्त्तनाद कर उठा है।

दूसरा—धीरे-धीरे बातें करो, कोई सुन लेगा।

पहला—भाई, अब सहा नहीं जाता। किसी बहिन-बेटी की इज्जत सुरक्षित नहीं। अत्याचारियों की क्रूरता के कारण मेवाड़ की ललनाएँ आत्म-हत्याएँ कर रही हैं। दिन दहाड़े डाके पड़ते हैं। जहाँ खुले दरवाजे कोई आना था, वहाँ दिन को भी लूट का बाज़ार गर्म रहता है।

दूसरा—और डाकू कहीं बाहर से नहीं आते—रक्षक ही भक्तक हैं!

पहला—आज युवराज के आने का दिन था।

दूसरा—किन्तु वे अभी तक नहीं आये। सूरज अस्ताचल में छिप गया है; अमावस की रात अपने अंधकार को लिये बढ़ी चली आ रही है और दुखों को भूल कर भी लोग वरबस दीपमाला का आयोजन कर रहे हैं। आज जाने

कितना मदिरा-पान होगा ? जनता के रुपये का कितना दुरुपयोग होगा । भोले-भाले निरीह नागरिकों पर कितना अत्याचार होगा !

पहला—बस प्याला भर चुका है, किसी क्षण छलका चाहता है ।

दूसरा—हमारी ओर से सब प्रबन्ध हो गया है । इस समय हमारे दो हजार व्यक्ति दुर्ग में आ चुके हैं और विश्वस्त स्थानों पर लगे हुए हैं । दुर्ग के सब फाटकों पर अपने आदमी हैं । अब तो केवल उन के आने की देर है । तलवारें हमारे म्यानो में तड़प रही हैं, आज आततयियों के रक्त से इनकी प्यास बुझेगी—केवल युवराज के आने की देर है ।

पहला—और यदि वे न आये ।

दूसरा—न आये ! यह तुम ने क्या कहा ? वे न आयेंगे, प्रण करके न आयेंगे ? ऐसा कभी हो सकता है ? कर्तव्य के आग वे अपने मान-अपमान को कोई महत्व नहीं देते ।

पहला—सुना है, खेलवाड़ा में भी विद्रोह हो गया है । कुमार राघव की मृत्यु के बाद जो ज्वाला धधकी थी, वह बुझाये नहीं बुझी । आधी रातोंर सेनाएँ उधर गयी हुई हैं ।

दूसरा—यह और भी अच्छा है । कुछ क्षण में ही पाँसा पलट जायगा । दुर्ग में सेना कम है और जो है वह भी असावधानी

के नशे में चूर है। स्वयं राठौर भारमली के प्रेम में विमुग्ध विलासिता की गहरी नींद सो रहा है। भुस तैयार है, केवल दियासलाई दिखाने की आवश्यकता है, अत्याचार, पाप, क्रूरता-सब धू-धू करके जल उठेंगे।

पहला—इस नारी का स्वभाव भी विचित्र है। माया की भाँति यदि आज यह एक के घर कृपा करती है तो कल दूसरे के आँगन में छमछमाती है। कुमार जीवित थे तो उन का दम भरती थी और आज उनके हत्यारे का।

दूसरा—मैं तो उसे देवताओं की ओर से भेजा हुआ राठौर का दुर्भाग्य समझता हूँ, जो उसे मृत्यु के ज्वालामुखी पर ला खड़ा कर देगा। सोचो यदि वह न आती तो क्या हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकते? क्या सतर्क रणमल की उपस्थिति में हमारी योजनाएँ पूरी हो सकती? भारमली के वेश में राठौर की मृत्यु आयी है। आज वह बेहोश है, यौवन की मदिरा पीकर बेसुध है, उसे क्या मालूम खेलवाड़ा में विद्रोह शान्त नहीं हुआ; उसे क्या मालूम उस के कर्मचारी उसके शासन की जड़ें ग्योखलो कर रहे हैं; उसे क्या मालूम उनके सरदार उससे असंतुष्ट होकर उसके राज्य का पाँसा पलट देना चाहते हैं। वह तो मस्त है और तभी जागेगा जब मृत्यु उसका कंधा झुककार कर चगायेगी।

पहला—सुनो, सुनो ! यह कैसा शोर मच रहा है।

दोनों सुनते हैं।

पहला—जैसे दूर सागर गरज रहा हो !

दूसरा—जैसे भयानक आँधी चल रही हो !

दोनों नेपथ्य की ओर देखते हैं ।

पहला—अरे यह तो युद्ध हो रहा है !!

दूसरा—युवराज और सैनिकों के घेरे में राजमाता और महाराणा आ रहे हैं । फाटक खोल दो ! और तलवारें निकाल लो !!

पहला—जय एकलिंग की, जय एकलिंग की ।

फाटक खोलता है ।

‘महाराणा मोकल की जय’, ‘राजमाता की जय’

के विहनाद में नंगी तलवारें लिये कुमार

चंड और दूसरे सैनिकों का प्रवेश ।

पहरेदार अभिवादन करते हैं ।

चंड—जाओ वीरो, आज अपने देश को स्वतन्त्र कराने से लिए प्रलय की भाँति राठौर सेना पर टूट पड़ो ! नगर के द्वार खोल दो । जहाँ कोई राठौर मिले मृत्यु के घाट उतार दो । सब जगह हमारे आक्रमण का शोर मचा दो । आज अपने प्रिय राघव की मृत्यु का, देश को दासता की वेड़ियों में जकड़ने के अत्याचार का—सब का खूब बदला लो । महाराणा मोकल की...

सब—(ऊँचे स्वर से) जय ।

चंड—राजमाता की.....

सब—(ऊँचे स्वर से) जय ।

चंड—मैं महाराणा को सकुशल महलों तक पहुँचाकर आता हूँ । तुम जाओ, रणमल को पकड़ लाओ, दूसरे सरदारों को पकड़ लाओ, न पकड़ सको तो उन सब के रक्त से खड्ग भवानी की प्यास बुझाओ ।

प्रस्थान

पर्दा गिरकर क्षण भर के लिए

फिर उठता है ।

भागते हुए राठौरों और उनकी पीड़ा करते हुए

सिमांदिगों का प्रवेश और प्रस्थान

नेपथ्य में मार-काट का शोर ।

पट-परिवर्तन

रणमल अपने उल्लास-भवन में भारमली के हाथ
से मदिरा पीता है ।

रणमल—भारमली !

भारमली—कहो राव !

रणमल—(नशे में) राव नहीं, राणा कहो । अब भी केवल
राव ! कहो तो आज इसी घड़ी चित्तौड़ का राणा हो जाऊँ !
मेवाड़ का महाराणा हो जाऊँ !

प्याला खाली करके भारमली को देता है ।

भारमली फिर भरती है ।

रणमल—(मूँड़ों पर ताव देता हुआ) भारमली, तुम रानी
होना चाहती हो, मेवाड़ की महारानी ?

भारमली—(प्याला उसकी ओर बढ़ाकर, कटाक्ष से) कौन सा
महारानी बनने से इनकार कर सकती है राव, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य
तथा वैभव किसे बुरा लगता है ?

रणमल—(नशे के जोश में) तो प्रण करो भारमली । यदि मैं
राणा हुआ, तुम मेरी महारानी बनना स्वीकार करोगी ? प्रण करो,
मैं कल ही अपने आपको मेवाड़ का राणा घोषित कर दूँगा ।
आज किस में शक्ति है कि रणमल के सामने खड़ा हो सके,
उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर सके । रहा मोकल ! वह तो

मेरे हाथ का खिलौना है। वास्तव में राणा तो मैं ही हूँ।

मदिरा पान करता है।

भारमली—आप पहले महाराणा बन लें। मेरा क्या है ? मैं कहीं दर तो नहीं ! फिर मेरी इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न भी कहाँ है ? आप के पास बल है, शक्ति है और मैं ठहरी अबला नारी !

रणमल—नहीं भारमली, शक्ति से मैं तुम्हारा शरीर बस में कर सकता हूँ, मन नहीं। चाहता हूँ, तुम मन से मेरी बन जाओ।

भारमली—मन ! मन तो एक विचित्र वस्तु है महाराज !

भारमली प्याला भरती है।

रणमल—भारमली पिलाओ ! आज दीपमाला के दिन अपने इन कोमल कर-कमलों से जिननी पिला पकती हो, पिलाओ ! होश न रहे, ज्ञान न रहे। (हँसता है।) आज मदिरा में न जाने कैसी मादकता है, कैसी मस्ती है। एक घना अंधकार मेरे मस्तिष्क पर, मेरी समस्त शक्तियों पर छाया जाता है। अंग-अंग में एक विचित्र स्फूर्ति, एक विचित्र नशा, एक विचित्र सहर प्रतीत होता है। तुम्हारे इन हाथों में जादू है भारमली !

भारमली मदिरा का प्याला देती है।

रणमल उठकर पीता है, फिर लेट जाता है।

रणमल—(अटपटे स्वर में) भारमली, कोई गाना सुनाओ ।
इस सस्वर पर एक और सस्वर की तह चढ़ा दो ।

भारमली लम्बी साँस लेती है, गाती है, जैसे रणमल
को नहीं, अपने मन को सुना रही हो ।

तुम को मरने का डर है
मुझ को जीने का खटका
तुम को जीने की धुन है
मुझ को मरने का लटका

रणमल—(नशे में) भारमली, क्या गाने लगी ? मृत्यु का
नहीं, जीवन का गीत गाओ, जीवन का !

भारमली नहीं सुनती, गाये जाती है ।

तुम जीने पर मरते हो
मैं मरने को जीती हूँ
तुम जो हालां टुकराते
मैं वह प्याला पीती हूँ

रणमल—(नशे में) प्याला पीती हूँ, वाह ! क्या बान है—
लाओ एक और प्याला इधर भी ।

भारमली गाते-गाते प्याला भरकर देती है ।
बाहर युद्ध का शोर सुनायी देता है ।

तलवारों की भंकार और सैनिकों के गिरने का शब्द,

दरवाज़े पर ज़ोर-ज़ोर से दस्तक

एक आवाज़—महाराज भागिए, महाराज भागिए, दुर्ग पर
आक्रमण हो गया है ।

भारमली गाना बन्द कर देती है ।

रणमल—(अर्धनिद्रावस्था में, आँखें बन्द भिये हुए, मदिग का
एक-एक घूँट पीता हुआ) भारमली ! बन्द कर दिया, गाओ,
किसी बात की परवाह नहीं, किसी बात की चिन्ता नहीं,
तुम गाओ । नगर पर आक्रमण हो, नगर विध्वंस हो जाय.
तुम गाओ ।

भारमली गाती है ।

तुम मर मर चाहो जाना

मैं जी जा चाहूँ मरना

तुम चाहो मुग लेना मर

म दुख से आनल भरना

रणमल बेहोश है, भारमली प्याला फेंकती है ।

उमड़ी पगड़ी से उसे बाँध देती है ।

रणमल एक बार आँखें खोलता है ।

रणमल—भारमली, यह क्या कर रही हो ?

भारमली—(व्यंग्य से) अपने प्रेमपाश में तुम्हें बाँध रही हूँ
ताकि कहीं भाग न जाओ ।

दरवाज़ा खटखटाने और 'किवाड़ खोलो'

'किवाड़ खोलो' का शोर ।

एक तलवार किवाड़ चीर कर अन्दर निकल आती है ।

रणमल—प्रेमपाश !

हँसता है, आँखें फिर बन्द कर लेता है ।

कई तलवारें किवाड़ छेदती हैं ।

भारमली—(कमर से छुरा निकालती है ।) मंडोवर के नारकीय कोड़े, नीच, पापी, नराधम ! अब तेरा अन्तिम समय है । आज अपने अपमान का, नगर की निर्बोध, निरीह ललनाओं के अपमान का, कुमार राघव के अपमान का, उनकी हत्या का—सब का इकट्ठा बदला चुकाऊँगी । प्रतिशोध में जलती हुई मेरे हृदय की ज्वाला आज शान्त हो जायगी ।

किवाड़ तोड़ा जा रहा है ।

—लोगों ने समझा होगा, भारमली नीच गायिका ही निकली । कुमार के मरने पर रणमल के विलास-भवन का खिलौना बनने आ गयी, अपमानित होकर मर नहीं गयी । उन्हें क्या मालूम—भारमली मरना चाहती थी, भारमली मर जायगी, किन्तु प्रतिसिंहा की आग ने उसे अब तक मरने न दिया । वह बदला लेकर मरना जानती है । अपमान की ज्वाला को शान्त किये बिना मरना नहीं जानती ।

छुरा चलाती है, हाथ काँप जाता है, रणमल का
 कन्धा छलनी होता है। वह तिलमिला कर
 ठठता है, ज़ोर लगाकर अपनी टाँगों को
 बन्धन-मुक्त कर लेता है और हल्ला मारकर चारपाई
 पीठ पर लिंथे हुए खड़ा हो जाता है। भारमली फिर
 छुरा उठाती है। किवाड़ टूट जाता है और नंगी
 तलवारें लिये सैनिक प्रवेश करते हैं।

नायक—कहाँ है पापी अत्याचारी रणमल ?

रणमल को देखकर तलवार उठाते हैं।

भारमली—ठहरो, मुझे इससे अपने बहुत से अपमानों का
 बदला लेना है।

रणमल एक हाथ खोल लेता है।

नायक—देवि, पुरुषों के होते हुए, स्त्री को खड्ग हाथ में लेने
 की आवश्यकता नहीं। आज राठौर के पाप का अन्त हो जायगा
 और धरती इसके बोझ से हल्की हो जायगी।

रणमल स्वतन्त्र हो जाता है, कमरे में रखा
 पीतल का कलश उठाता है और भारमली पर
 वार करता है, वह झुक जाती है, गिर पड़ती है।
 वही कलश वह नायक पर पूरे ज़ोर से मारता है
 वह अचेत होकर गिरता है। एक हाथ से उसकी
 तलवार छीनकर दूसरे में पकड़े हुए कलश से
 अन्य सैनिक के वारों को रोक कर वह लड़ता-
 भिड़ता बाहर चला जाता है।

भारमली—(धीरे-धीरे उठती है, नेपथ्य की ओर देखती है, चौंकती, है, जबदी से छुरा उठाती है ।) तुम भागना चाहते हो, तुम भारमली के रहते भाग जाओगे ।

पूरे जोर से छुरा फेंकती है, किसी के गिरने की आवाज़-

‘महाराणा की जय’ ‘राजमाता की जय’ के नारे ।

पट-परिवर्तन

कुछ सैनिक धरती पर रणमज के रक्त-रंजित मृत
शरीर को घेरे खड़े हैं ।

हरिसिंह तलवार खींचे प्रवेश करता है ।

हरिसिंह—कहाँ है वह निर्दयी, क्रूर राठौर ? आज मेरी
खड्ग अपने स्वामी की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए तड़प
रही है ।

सैनिक आगे से हट जाते हैं ।

—मर गया ? (निराशा से) इतनी दूर से बिना सुस्ताये
बिना आराम किये, प्रतिहिंसा के पैरों पर उड़ते हुए, आना वृथा
हुआ । प्रण किया था कुमार राघव की मृत्यु का बदला लूँगा ।
भगवान ने इसके पापों का प्याला पहले ही छलका दिया, इस
पापी के रक्त से मेरी खड्ग को अपवित्र होने से बचा लिया ।

सैनिकों के साथ चंड का प्रवेश

‘राजमाता की जय’, ‘कुमार चंड की जय’ का शोर

चंड—(रणमज के शव की ओर देखकर) किस वीर की खड्ग
ने, इस पापी की मृत्यु का जाम पिलाया, किस बहादुर की तेग ने
मेवाड़ के अपमान का बदला चुकाया—मैं उसे पुरस्कार दूँगा ।

सब चुप रहते हैं ।

चंड—(आश्चर्य से उनकी ओर देखकर) आप में से किस ने.....

एक सैनिक—महाराज ! रणमल हमारे चार सैनिकों को मार कर निकल ही भागा था कि.....

चंड—तुम्हारी तलवार ने उसके पाप का अंत कर दिया ।

वही सैनिक—नहीं महाराज !

चंड—(बेताबी से) तो किस ने.....

वही सैनिक—भारमली के छुरे ने उसका काम तमाम कर दिया ।

चंड—भारमली के छुरे ने ! कहाँ है भारमली ?

दो सेवक घायल भारमली को उठाये प्रवेश करते हैं

और फ़र्श पर बिटा देते हैं ।

चंड—यह कैसे घायल हुई ?

एक सेवक—इन्होंने आत्म-हत्या कर ली । जब हम (रणमल की ओर इशारा करके) इस के कमरे में गये तो इन्हें रक्त में लथपथ पड़े पाया ।

वही सैनिक—जब हम रणमल की खोज करने आये थे तो कमरे के किवाड़ बन्द थे । जब हम ने उन्हें तोड़ डाला तो देखा कि यह चारपाई से बँधा पड़ा है और भारमली छुरा ताने खड़ी है । हमने भारमली को बध करने से रोका । इस बीच

में रणमल स्वतन्त्र हो गया। खूब लड़ाई हुई, जान बचाने के लिए यह जी तोड़कर लड़ा, हमारे कुछ सैनिक भी मारे गये और मेरी खड्ग इसे धराशायी करने ही वाली थी कि भारमली ने छुरा तान कर मारा जिस से यह गिर पड़ा। फिर यह आयी और छुरा खेंचकर ले गया, शायद उसी से इन्होंने अपनी हत्या कर ली।

भारमली आँखें खोलकर फटी-फटी

दृष्टि से देखती है

चंड—भारमली !

भारमली—(घृत की ओर देखते हुए, क्षीण आवाज़ में) मैं राघव के पास जा रही हूँ।

चंड—भारमली !

भारमली—(उखड़े स्वर से) मुझे खेलवाड़ा में ले जाकर जलाना।

आँखें बन्द हो जाती हैं।

चंड—(लम्बी साँस लेकर) भारमली देवी थी, मेवाड़ की वीर रमणी थी ! गायिका ही नहीं थी, हीन ही नहीं थी, उपेक्षा के योग्य ही नहीं थी ! (फिर दीर्घ निश्वास छोड़ते हैं।) इस शव को खेलवाड़ा पहुँचा दिया जाय और इसकी इच्छा के अनुसार ही इसका अंतिम संस्कार किया जाय।

हरिसिंह—(रणमल के शव की ओर संकेत करके) और इसके साथ क्या व्यवहार किया जाय । ऐसे पापी का सिर काट कर दुर्ग के मीनार पर लटकाना चाहिए और शरीर चील और कौवों का भोज बनने के लिए फेंक देना चाहिए।

चंड—हाँ, इस कृतघ्न का सिर काट लो और उसे दुर्ग के मीनार पर.....

तेज़ी से हंसाबाई का प्रवेश

हंसाबाई—नहीं सिर न काटो, मारो नहीं । इसे छोड़ दो, मेरे इस निष्ठुर भाई को छोड़ दो !

रणमल के मृत शरीर को देखकर

—हाय, मार दिया, मेरे भाई को मार दिया, किसने यह हत्या की ? (चंड की ओर देखकर) तुम ने इसे मारा, तुम ने मेरे भाई के छुरा भोंका । अच्छा हुआ, मैंने जो तुम्हारा अपमान किया था, तुमने उसका बदला ले लिया । बहिन को भाई से सदा के लिए अलग कर दिया !

चंड—माँ, माँ !

हंसाबाई—वह मूर्ख था, कृतघ्न था, किन्तु फिर भी मेरा भाई था । मैंने उस से सगे भाइयों से अधिक प्रेम किया था, मैं उसे केवल दंड देना चाहती थी, मारना न चाहती थी. किन्तु तुम—चलो तुम्हारे मार्ग से यह काँटा भी निकल गया ।

चंड—माँ ! यह सेवक की सहन-शक्ति के बाहर है, तुमने

बुलाया, मैं चला आया, तुम धक्के देती हो, मैं चला जाऊँगा ।

तेज़ी से प्रस्थान

हरिसिंह—कुमार, कुमार.....ठहरो मैं भी आया ।

प्रस्थान

हंसाबाई—(जैसे चौंककर दो पग बढ़कर,) चंड ! चंड !!
.....चला गया । आह ! मैं अपने आप में नहीं हूँ !

शव की ओ देखकर, रोत हुए

—तुम मेरे भाई थे, शत्रु ही सही, मेरे बच्चे से विद्वेष रखने वाले ही सही, मेरी माँ और भाई के घातक ही सही, फिर भी मेरे भाई थे, मेरे साथ बचपन में खेले थे, मेरे पितृ-कुल के अंतिम दीप थे । तुमने कभी न जाना, तुम्हारी इस साँतिली बहिन के हृदय में तुम्हारे लिए कितना स्नेह है, उसका हृदय किस तरह फटा पड़ता है !

पड़ाड़ खाकर शव पर गिर पड़ती है ।

पट-परिवर्तन

चित्तौड़ का एक मार्ग ।

सामने शिव का विशाल मन्दिर' दीपमाला की
रोशनी से जगमगा रहा है ।

अन्दर से गाने की धीमी-धीमी ध्वनि आ रही है ।

हे शिव हे । 'कर हे ईश

जय जय जय जय जय लकुटाश

कुमार चंड और उनके पीछे-पीछे हरिसिंह का प्रवेश

गाने की ध्वनि जारी रहती है :

युग युग जियें हमारे चंड

पापा पायें भारा दंड

फिर हो सुग का राज अखंड

सब गुण गाये तेरे ईश

जय जय जय जय.....

हरिसिंह—(निश्वास छोड़कर, जैसे अपने आप) सारा मेवाड़
आज अपने रत्नक की प्रशंसा के गीत गा रहा है, दासता की
बेड़ियों से मुक्त होकर, स्वतन्त्र होकर सुख मना रहा है ! और
उसका वह रत्नक, उसकी बेड़ियों को काटने वाला उसे
त्याग कर जा रहा है ।

चंड—(चलते चलते रुक कर) हरिसिंह !.....मनुष्य का

कत्तंठ्य काम करना है उसके फल की इच्छा करना नहीं ।

हरिसिंह—किन्तु महाराज ! ये आप को छोड़ेंगे नहीं, ये मेवाड़वासी आप के मेवाड़-त्याग की बात सुनकर फिर आप को ले आयेंगे ।

कुमार चुप रहते हैं ।

हरिसिंह—मैं कहता हूँ महाराज ! स्वयं राजमाता आप से आने का अनुरोध करेंगी, महाराणा आप को लेने जायँगे, मेवाड़-वासी आप के पाँव पड़ेगे । मैं भविष्यवाणी करता हूँ—आप को लौटना होगा ।

चंड—(शून्य में देखते हुए) राजमाता कहती हैं—मैंने रणमल को मरवा दिया, मैं उसे पथ का काँटा समझता था, मैं अपने अपमान का बदला लेना चाहता था ।

हरिसिंह—इस समय महारज ! उनकी आँख पर अपने भाई की मृत्यु के दुख का पर्दा छाया हुआ है, ज्योंही वह हट जायगा, वे आयेंगी । मैं कहता हूँ आप आज की रात रुक जाइए ।

चंड—भविष्य की बातों को सोचने से क्या लाभ हरिसिंह ? मनुष्य को अपनी आँखे सदैव वर्तमान पर ही रखनी चाहिए ।

चल पड़ते हैं ।

हरिसिंह—(पीछे चलता हुआ) महाराज, रात को कहाँ जायेंगे ?

चंड—मेरे लिए अब रात-दिन एक समान हैं !

हरिसिंह—रास्ता ऊबड़-खाबड़ है महाराज !

चंड—रास्तों का ज्ञान रखना मैंने कब का छोड़ दिया है !

प्रस्थान

हरिसिंह—महाराज !.....महाराज !!

प्रस्थान

पटाक्षेप

हमारे अन्य प्रकाशन

उपन्यास

गिरती दीवारें	उपेन्द्रनाथ अशक	१०)
गर्म राख	"	८)
सितारों के खेल	"	३॥)
बड़ी-बड़ी आंखें	"	३॥॥)
ये आदमी ये चूहे	"	३)
हिज एक्सलेंसी	अशक तथा गुप्त	२॥)
बया का घोंसला और साँप	लक्ष्मीनारायण लाल	३॥)
मृगजल	अनन्त गोपाल शेवड़े	५)
गुनाह बेलज्जत	द्वारका प्रसाद	२॥)
आग और पानी	तेज बहादुर चौधरी	२)
लकीरें	ओम प्रकाश श्रीवास्तव	२॥)
ज्वाला मुखी	अनन्त गोपाल शेवड़े	५)

कहानी संग्रह

छूँटि	उपेन्द्रनाथ अशक	५)
जुदाई की शाम का गीत	"	३॥॥)
काले साहब	"	३)
बैंगन का पौधा	"	३)
पिजरा	"	३)
दो धारा	अशक तथा कौशल्या	३)
मेरा बेटा मेरा दुश्मन	अब्बास	३॥॥)
अवध की शाम	"	२॥॥)
शिमल की क्रीम	वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता	२)

काव्य

दीप जलेगा	उपेन्द्रनाथ अशक	३॥)
चाँदनी रात और अजगर	"	३)
बरगद की बेटा	"	३)

निबन्ध

रेखाएँ और चित्र	अशक	४)
तीसरी भूख	अनन्त गोपाल शेवड़े	२॥)
बहानेबाजी	भदन्त आनन्द कौसल्यायन	३॥)

अश्क का नाटक-साहित्य

पूरे नाटक

आदि-मार्ग	५)
स्वर्ग की झलक	१।।।)
छूटा बेटा	२।)
अलग-अलग रास्ते	२।।)
अंजो दीदी	२।।।)
पैतरे	३।)
जय-पराजय	३।।)

एकांकी

देवताओं की छाया में	२।।।)
पक्का गाना	३)
चरवाहे	३)
पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ	३।।।)
अंधी गली (प्रेस में)	
प्रतिनिधि एकांकी	३)

नाटककार अश्क

अश्क के समस्त नाटक साहित्य पर

विवेचनात्मक ग्रन्थ ७)